मुनि श्री १०८ तरुण सागर जी महाराज द्वारा रचित

# जिनेन्द्र प्रार्थना

जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए।
जय जिनेन्द्र की ध्वनि से अपना मौन खोलिए।।

* * * * *

सुर असुर जिनेन्द्र की महिमा को नहीं गा सके।
और गौतम स्वामी न महिमा को पार पा सके।।
जय जिनेन्द्र बोलकर जिनेन्द्र शक्ति तौलिए।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए।।

* * * * *

जय जिनेन्द्र ही हमारा एक मात्र मंत्र हो।
जय जिनेन्द्र बोलने को हर मनुज स्वतंत्र हो।।
जय जिनेन्द्र बोल-बोल खुद जिनेन्द्र होलिए।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए।।

* * * * *

पाप छोड़ धर्म जोड़ ये जिनेन्द्र देशना।
अष्टकर्म को मरोड़, ये जिनेन्द्र देशना।।
जाग! जाग!! जाग!! चेतन बहुकाल सो लिए।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए।।

* * * * *

हे! जिनेन्द्र ज्ञान दो, मोक्ष का वरदान दो।
कर रहे हैं प्रार्थना, हम प्रार्थना पर ध्यान दो।।
जय जिनेन्द्र बोलकर, हृदय के द्वार खोलिए।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र बोलिए।।

# क्रान्तिकारी प्रवचन

(प्रवचनांश) समीक्षार्थ

इन्दौर के विभिन्न स्थानों पर मुनिश्री द्वारा दिए गए
अमृत -प्रवचनों का दैनिक समाचार पत्रों से अपूर्व-संकलन

6555

प्रवक्ता

## मुनिप्रवर पूज्य श्री १०८ तरुणसागरजी महाराज

संपादन

## मुनिश्री प्रज्ञासागरजी

प्रकाशक

कुन्दकुन्द संस्कृति न्यास

बागीदौरा, जिला-बांसवाड़ा (राज.)

पिन-३२७६०१

★ कृति : क्रान्तिकारी प्रवचन

★ कृतिकार : मुनिप्रवर श्री तरुणसागरजी महाराज

★ प्रथम संस्करण : अप्रेल १९९३

★ प्रथमावृत्ति : १५००

★ मूल्य : पांच रुपये

★ मुद्रक : त्रिमूर्ति प्रिन्टर्स, इन्दौर

परम पूज्य मुनिश्री तरुणसागरजी महाराज,
मुनिश्री प्रज्ञासागरजी के इन्दौर प्रवास एवं
स्याद्वाद शिक्षण- प्रशिक्षण शिविर के अवसर पर प्रकाशित

प्रकाशन सहयोग

मुनिश्री का एक

अनन्य भक्त

प्राप्ति स्थल

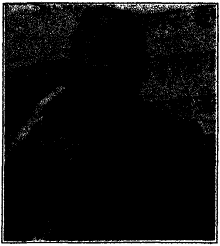
प्रज्ञ एवं श्री संघ

६५, बी नेमीनगर (जैन कालोनी), इन्दौर

कुन्दकुन्द संस्कृति न्यास

बागीदौरा जि.- बांसवाड़ा (राज.)

# समर्पण



*परम श्रद्धास्पद, जीवन-शिल्पी, अकारणबन्धु*

*पूज्यातिशय श्रद्धेय गुरुदेव*

*आचार्य श्री पुष्पदंतसागरजी म. सा.*

*के पावन कर कमलों में*

*सादर सविनय*

*समर्पित ...*

# सम्पादकीय...

वर्तमान युग – समस्याओं का युग है। सर्वत्र समस्यायें ही समस्यायें हैं। चाहे वो गरीबी की हों या भ्रष्टाचार की, चाहे वो शोषण की हों या बेरोजगार की, चाहे वो अलगाववाद की हों या समाजवाद की, चाहे वो आतंकवाद की हो संप्रदायवाद की, चाहे वो विज्ञान की हो या भौतिकवाद की। समस्यायें तो समस्यायें ही हैं। इन समस्याओं के शिकंजों में आज हर आदमी और उसकी आदमियत कैद है। आदमी बैचेन है, इन समस्याओं में फंसकर, वह चाहता है समस्याओं का समाधान, समाधान ही नहीं समस्याओं से मुक्ति भी.....?

प्रश्न उठता है इन समस्याओं का कारण क्या है और इनका निवारण क्या है? कारण है हमारा विराट अहंकार और निवारण है प्रभु महावीर का विराट जीवन्त जीवन-दर्शन, प्रभु के द्वारा प्रतिदिन अध्यात्म का अनुपम विवेचन, साथ ही समन्यवय -सद्भाव और संस्कार के पथ पर गमन। यदि हमने निवारण के इन कारणों का आसरा लिया तो निश्चित है हम इन समस्याओं से मुक्त हो जायेंगे।

फिर प्रश्न उठता है प्रभु महावीर का जीवन-दर्शन और उनके द्वारा प्रतिपादित अध्यात्म का विवेचन अत्यन्त कठिन और कष्टकर है। फिर इसे आज की भाषा में कैसे समझा और समझाया जाये?

आपकी-हमारी इसी समस्या को समझकर मुनिश्री तरुणसागरजी महाराज ने हमें महावीर के दर्शन और अध्यात्म को आज की भाषा में समझाने का सार्थक प्रयास किया है।

मुनिश्री की प्रवचन शैली, अत्यन्त सहज, सरल और आत्मा को आन्दोलित करने वाली मर्मस्पर्शी है, जो श्रोताओं के ह्रदय पटल पर अमिट छाप अंकित करती है। कारण कि मुनिश्री ने महावीर को जिया है, अध्यात्म को पिया है, यानि कि वो सब कुछ किया है जो एक आत्म साधक को करना चाहिए।

मुनिश्री आत्म-साधक ही नहीं, आत्म-चिंतक भी हैं। उन्होंने अपने चिन्तन के बल से प्रभु महावीर के संदेशों को, अध्यात्म के उपदेशों को जन-जन तक पहुँचाने का संकल्प किया है। संकल्प ही नहीं किया उसे साकार रुप भी रहे हैं। इंदौर के दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले मुनिश्री के प्रवचनांश इस बात के ज्वलंत उदाहरण हैं।

प्रस्तुतकृति **क्रान्तिकारी प्रवचन** दैनिक पत्रों में प्रकाशित केवल मुनिश्री के प्रवचनांशों का शब्द संचयन है।

मेरा मानना है कि ये प्रवचन आत्म अनुसंधान, आत्म अन्वेषण की प्रेरणा देंगे। साथ ही जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में कामयाब सिद्ध होंगे।

यदि आपने पूर्ण आत्मीयता के साथ इस प्रवचनों को पढ़ा, समझा और जीवन में उतारने की कोशिश की तो निश्चित है जीवन तमाशा नहीं, तीर्थ बनेगा। जीवन कलह-प्रिय नहीं कल्याण-प्रिय होगा। और जिस दिन आपका जीवन तीर्थ होगा, आप कल्याण प्रिय होंगे, उस दिन आप हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई, जैन-बौद्ध नहीं, एक इन्सान होंगे, आदमी होंगे। और इसीलिये मुनिश्री इसी कृति के अन्दर कहते हैं- हिन्दुस्तान को हिन्दुओं की नहीं आदमी की जरुरत है।

प्रस्तुत कृति में प्रज्ञ एवं श्री संघ द्वारा आयोजित महावीर व्याख्यान-माला नेमीनगर (जैन कालोनी) इंदौर, दिगम्बर जैन समाज छावनी द्वारा आयोजित आध्यात्मिक व्याख्यान माला, कृष्णपुरा जैन समाज द्वारा आयोजित मंगल व्याख्यान-माला, दिगम्बर जैन समाज इंदौर द्वारा आयोजित झलक जैन संस्कृति, बीस दिवसीय सद्भाव समन्वय संस्कार पदयात्रा एवं अ.भा.दि. जैन महासभा के तत्वाधान में आयोजित विशाल स्याद्वाद शिविर के दौरान हुए अमृत प्रवचनों का अपूर्व संकलन है।

इस कृति के सम्पादन प्रकाशन और संकलन में जिन लोगों का सहयोग भुलाया नहीं जा सकता है वे हैं- भाई निर्मल कुमार जैन (आर.टी.ओ.), इन्दकुमार सेठी, डॉ. संजय जैन, संतोष नायक, नरेन्द वेद, सलिल बड़जात्या, अजीत छाबड़ा आदि प्रज्ञ एवं श्री संघ के उत्साही कार्यकर्ता, छावनी से भाई रमेश कासलीवाल, देवेन्द डोसी, जम्बुकुमार अजमेरा कृष्णपुरा से अशोक काला, मनोज गंगवाल, सत्येन्द रावंका आदि भाई राजकुमार जैन (त्रिमूर्ति प्रिन्टर्स) क्लर्क कालोनी, इंदौर का प्रकाशन में अत्यन्त सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ है। मेरे सभी सहयोगीगण आशीर्वाद के पात्र हैं।

अन्त में परम पूज्य गुरुदेव को नमन करते हुए मुनिश्री को हृदय से... प्रतिवन्दन.... प्रतिनमन....

१६.४.९३, इंदौर

मुनि प्रज्ञासागर

# मुखरित मौन

विचार सरिता की तरह होते हैं, तो नित्य-नूतन, सर्वग्राही एवं हितकारी होते हैं, लेकिन विचार जब थमे हुए पानी के डबरे की तरह होते हैं तो पुराने अग्राही एवं अहितकारी हो जाते हैं। मनुष्य का दुर्भाग्य यह है कि उसने विचार करना बंद कर दिया है एवं खूंटी की तरह सभ्यता को दीवाल में गड़ाकर अगरबत्ती की सुगंध देने की कला को धर्म की संज्ञा दे दी है। इस संदर्भ में यह भी सोचना अपरिहार्य है कि अच्छे विचारों ने आना तो प्रारंभ किया लेकिन तदनुरुप आचरण के अभाव ने आतिथ्य कर लिया और परिणाम यह हुआ कि श्रवणीय विचार सभ्यता के बीच स्थान बनाने की सामर्थ्य पैदा नहीं कर पाये।

इस परिपेक्ष्य में श्रमण संस्कृति के उपासक आगम- अनुशासनजीवी मुनिश्री १०८ तरुणसागरजी महाराज के चिन्तन और चर्या (आचरण) पर दृष्टि डालें तो यह निष्पति निष्कर्ष में आती है कि वे गहन विचारवेत्ता एवं सघन साधक दोनों हैं। वे जो कहते हैं, उसे जीते भी है। विचारक और ऋषि में यही भेद है कि विचारक के पास चिन्तन तो होता है, लेकिन आचरण नहीं, जबकि ऋषि का चिन्तन आचरण से उद्‌भूत होता है। इस पृथ्वीगृह के बहुविवादास्पद दार्शनिक ओशो ने एक अद्‌भूत कथन किया है- **अच्छा मनुष्य किसे कहें हैं? मात्र उसे - जो अच्छे से अच्छा चिन्तन करे और उस चिन्तन के लिये जीवन को दांव पर लगाने के लिय तैयार रहे।** मुनिश्री तरुणसागरजी ऐसे ही बिरले अंगुलियों में गिने जाने वाले विचारशील साधकों की श्रेणी में से हैं।

इस साहित्य संकलन में मुनिश्री के चिन्तन की गहराई/शब्द-लालित्य/वाक्य सौंदर्य की छवि पढ़ने और पढ़ने योग्य मानसिकता का निर्माण करती है। आपकी वाणी में झरने-सा प्रवाह देखते ही बनता है। जैसे- **जीवन को तमाशा नहीं तीर्थ बनाओ।... या महावीर को मंदिर से निकालकर मन में, दीवाल से उखाड़कर दिल में बैठाना होगा।** इसी तरह अनेकों प्रवचनों में लालित्य एवं काव्योचित प्रवाह में अवगुंठित आपके विचार दर्शन के जगत में अपना वैशिष्ट्य रखते हैं। एक और वाक्य देखें- **महावीर का विश्वास कलम पर नहीं, कदम पर था।** आचरण की ओर यह वाक्य एक सिंहनादी संकेत भी है एवं काव्यगुण का धारक भी। शब्दों की सहज जमीन से दर्शन का बरगद

ऊगना मुनिश्री की वाणी की अभूतपूर्व कुशलता है। कितनी सहजता से आपने भगवान महावीर के लिए सुपर साइन्टिस्ट कहा है, और आगे आप विज्ञान एवं व्यक्ति की विवेचना करते हुए कहते हैं, विज्ञान ने हमें टी.वी. सेट, डिनर सेट, टी सेट, सोफा सेट डायमंड सेट तो दिया है लेकिन दिमाग को अपसेट कर दिया है।

मुनिश्री ने जीवन उत्क्रांति विषयक अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। धर्म/आचरण/जीवन-मृत्यु/विज्ञान/साधना/आध्यात्मिक मूल्य में आह्वान एवं सोते हुए मनुष्य को जगाने की पुकार स्पष्टरुपेण परिलक्षित होती है। समाचार-पत्रों में आपके व्याख्यानों के प्रकाशित अंशों के इस संकलन को देखने से मुनिश्री की तर्कणा शक्ति, शब्द सौष्ठवत्ता एवं चिन्तन प्रियता प्रमाणित होती है। यह प्रकाशित प्रवचनांश अपने आप में पूर्ण प्रतीत होते हैं। गागर में सागर का प्रकाशन पठनीय चिन्तवन एवं मनन योग्य तो है ही, इससे बढ़कर मानवीय उत्क्रांति का संवाहक भी है।

आज के आपाधापी के व्यस्त जीवन में छोटे-छोटे विचारों के माध्यम से दर्शन शास्त्र के बड़े-बड़े ग्रन्थों का सार प्राप्त होने की हमारी आकांक्षा को यह संकलन पूर्ण करने में समर्थ है।

सुधी श्रावकों के लिए इस प्रकाशन में वह सहज स्वरुप हो उठा है, जिसके माध्यम से बूंद में सागर समाया हुआ दिखाई पड़ता है। एक बात हर्षपूर्वक व्यक्त करना चाहता हूं कि मुनिश्री के प्रवचनों के महत्वपूर्ण अंशों को समय-समय पर विभिन्न समाचार पत्रों में सुर्खियों में जिस बखूबी से प्रकाशित व प्रचारित किया है वह मुक्त कंठ से प्रशंसा व सराहना के योग्य है पत्रकारिता की यह स्तरीय यात्रा सम्मान की अधिकारिक पात्रता रखती है। इस प्रकाशन की आधारशिला है वे ही समाचार जो समाचार-पत्रों से प्राप्त हुए हैं।

अन्त में मुनिश्री की देशना चिन्तन व चर्या का भारतीय संस्कृति एवं मानवीय उत्क्रांति की दिशा में सारभूत मानते हुए प्रकाशन के स्तुत्य कार्य हेतु साधुवाद से भरा हूँ।

(कृति से नेपथ्य से)

अजित जैन, एडव्होकेट, जबलपुर

# विषय अनुक्रमिणा

## I महावीर व्याख्यान माला, नेमीनगर, इंदौर



## II आध्यात्मिक व्याख्यान माला छावनी, इंदौर

## III बीस दिवसीय सद्भाव, समन्वय, संस्कार पदयात्रा, इंदौर

## IV प्रेस वार्ताएँ



## V मंगल व्याख्यान माला कृष्णपुरा, इंदौर



## VI. स्याद्वाद शिक्षण – प्रशिक्ष शिविर, मांगलिक भवन, इतवारिया, इंदौर

# जीवन को तमाशा नहीं, तीर्थ बनाएं

**आदमी सुख को बाहर ढूंढता है, जबकि वह स्वयं सुख का भंडार है। जिस प्रकार फूल की सुगन्ध फूल में, शक्कर की मिठास शक्कर में, दीपक का प्रकाश दीपक में रहता है, उसी प्रकार आत्मा का सुख आत्मा में रहता है।**

इन्दौर। प्रखर प्रवक्ता जैन मुनि श्री तरुणसागरजी ने कहा कि जीवन को तमाशा नहीं, तीर्थ बनाओ। जिन्होंने जीवन को तीर्थ बनाया वे तीर्थंकर बन गये, और जो तमाशा बनाकर रह गए वे तिरोहित हो गए। मन की गुलामी और इन्द्रियों की दासता का परित्याग करना जीवन को तीर्थ बनाने की दिशा में किया गया सार्थक प्रयास है।

युवासंत श्री तरुण सागरजी ने भौतिक जीवन को त्यागकर अध्यात्म को स्वीकारते हुए धर्म को वास्तविक रूप में अंगीकार करने की नेक सलाह दी और कहा कि आवश्यकता की पूर्ति तो संभव है, लेकिन आकांक्षा की नहीं। आकांक्षा अनन्त है, एक इच्छा की पूर्ति होती है तो चार नई इच्छाएं जागृत हो जाती है ऐसी स्थिति में इच्छा पूर्ति किस प्रकार संभव है ? इच्छाओं का निरोध ही जीवन का आनंद है।

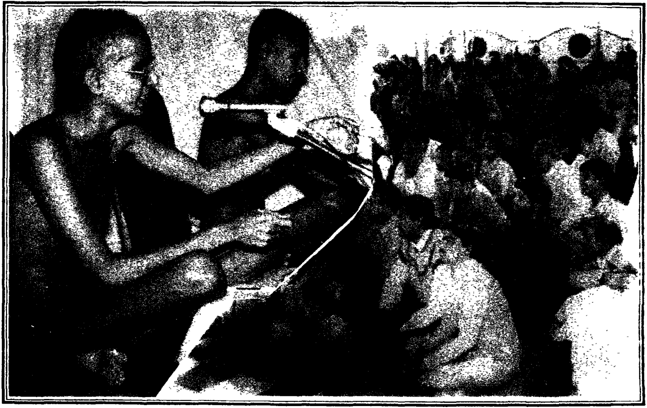
प्रखर विचारक श्री तरुण सागरजी ने आगे कहा कि आदमी सुख को बाहर ढूंढता है, जबकि वह स्वयं सुख का भंडार है। जिस प्रकार फूल की सुगन्ध फूल में,शक्कर की मिठास शक्कर में, दीपक का प्रकाश दीपक में रहता है, उसी प्रकार आत्मा का सुख आत्मा में रहता है।

मुनिश्री ने कहा है कि मनुष्य प्रदर्शन में जी रहा है इसलिए आत्मदर्शन से वंचित है। दूर दर्शन हमें स्वयं से दूर ले जाता है अतः दूरदर्शन पर नहीं, आत्मदर्शन पर विश्वास रखना चाहिए। धर्म प्रदर्शन की चीज नहीं, आत्म दर्शन की कला है। धर्म स्वयं को जानने पहचानने का साधन है।

मुनिश्री ने कहा कि चारित्र ही मानवता का आधार है। धन संपदा, विद्या से भी कहीं अधिक महत्व चारित्र का है। चारित्र द्वारा बौद्धिक व आध्यात्मिक शक्तियाँ विकसित होती है। उन्होंने बताया कि सामायिक का अर्थ डिस्चार्ज बैटरी को चार्ज कर लेना है। सामायिक व ध्यान से हमें एक ऊर्जा की प्राप्ति होती है जिससे जीवन में स्फूर्ति, उत्साह व आनंद की अनुभूति होती है। जैन दर्शन में वर्णित सामायिक आत्मसाक्षात्कार की एक प्रक्रिया है।

□ नवभारत १६ फरवरी ९३

# अनुप्रेक्षा



महावीर व्याख्यानमाला जैन कालोनी मैं प्रवचन करते हुए



शिविरार्थी प्रातः ध्यान करते हुए

# महावीर को जिव्हा में नहीं, जीवन में बसाएं

**भगवान महावीर आज भी प्रासंगिक हैं । महावीर आज भी अप-टू-डेट हैं। वे 'आउट ऑफ डेट' कभी हो ही नहीं सकते, क्योंकि उनके सिद्धान्त शाश्वत है गंगा केजल की तरह निर्मल व हिमाचल की तरह उच्च हैं ।**

इन्दौर । प्रखर चिंतक जैन मुनिश्री तरुण सागरजी महाराज ने कहा कि महावीर को जिव्हा में नहीं, जीवन में बसाएं । जब तक महावीर जिव्हा पर रहेंगे, जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होगा। अगर जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना है तो महावीर को मंदिर से निकालकर मन में बसाना होगा, दिवालों से उखाड़ कर दिल में बैठाना होगा । जिस दिन महावीर हमारे मन और दिल मे बस जायेंगे, उस दिन हमारा दिल दायरा न रहकर दरिया बन जायेगा । अभी हमारा दिल बहुत छोटा है उसमें हम दो-हमारे दो ही समा पाते हैं । अगर अपने दायरे दिल को दरिया दिल बनाना है तो महावीर स्वामी को अपने दिल में बसाओ और स्वयं महावीर मय हो जाओ।

ओजस्वी वक्तामुनि श्री तरुण सागरजी ने विशाल धर्म सभा को सम्बोधित करते हुए आगे कहा कि भगवान महावीर आज भी प्रासंगिक हैं । महावीर आज भी 'अप-टू-डेट' हैं। वे 'आउट ऑफ डेट' कभी होही नहीं सकते। क्योंकि उनके सिद्धान्त शाश्वत हिमाचल की तरह उच्च हैं ।

भगवान महावीर के सिद्धान्तों की विशद् व गूढ़ व्याख्या करते हुए मुनिश्री ने कहा कि महावीर स्वामी के सिद्धान्त आदर्श विश्व निर्माण में अत्यन्त सहयोगी है । महावीर के उपदेश व्यष्टि व समष्टि दोनों के लिए मंगलकारी है । मुनिश्री ने बताया कि दुनिया को जीतने वाला सिर्फ वीर होता है, लेकिन अपने आपको जीतने वाला महावीर होता है । दुनिया को जीतना आसान है, सरल है, लेकिन अपने को जीतना अत्यन्त कठिन है। विश्व में विजय की फताकाएं गाढ़ने वाला सम्राट सिकन्दर भी जीवन के अन्तिम क्षणों में अनुभव करता है कि दुनिया को जीतकर भी अपने आप से हार गया।

मुनिश्री ने कहा कि विलासिता के संसाधन हमारे जीवन चमन को उजाड़ कर न सिर्फ वीरान बना देते हैं अपितु दर्द भरा जीवन जीने के लिए विवश भी कर देते हैं । आध्यात्मिकता के अभाव में भौतिकता व्यक्ति को केवल पतनोन्मुखी बनाती है। जीवन को उन्नत बनाने हेतु धन की नहीं, धर्म की आवश्यकता होती है ।

□ **नईदुनिया**
१९ फरवरी ९३

# महावीर का विश्वास कलम पर नहीं, कदम पर था

**जो रोटी के पीछे भागे वह भिखारी है और जिसके पीछे रोटी भागती है वह भिक्षु है। भिक्षु को भिखारी कहना या समझना नादानी है। भिक्षु के द्वार पर तो सम्राट भी सिर झुकाता है। महावीर भिखारी नहीं, भिक्षु थे।**

इन्दौर। युवा तपस्वी मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि भगवान महावीर अतीत के भव्य स्मारक ही नहीं भविष्य के प्रकाश स्तम्भ तथा वर्तमान के मार्गदर्शक भी है। महावीर का विश्वाश कलम पर नहीं, कदम पर था। उनके पास केवल वाणी का विलास नहीं था, जीवन का निचोड़ भी था। उनकी आस्था जातिगत भेदभावों से सर्वथा मुक्त थी। महावीर जन्म की अपेक्षा कर्म पर ज्यादा जोर देते थे। उनका मानना था कि व्यक्ति जन्म से नहीं, कर्म से महान बनता है, उच्च कुल में जन्म लेना तो एक संयोग मात्र है लेकिन कुलीन व्यक्ति के रूप में मरना वस्तुतः मानव जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है।

बालयोगी श्री तरुणसागरजी ने विश्व समुदाय में बढ़ती जा रही हिंसा, वैमनस्यता, अशांति और भय के वातावरण में महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित 'जिओ और जीने दो' के सिद्धान्त को आज के परिपेक्ष में उपादेयता जनक बताया और कहा कि आज इसके व्यापक प्रचार व प्रसार की आवश्यकता है। जिओऔर जीन दोका सूत्र समूची मानव जाति के लिए एक अमृत ओषधि है। अगर आज हर आदमी इस अमृत वचन को अपना जीवनसूत्र बना ले तो आज ही जीवन क्रान्ति का सूत्रपात हो सकता है अगर हमें सही ढंग से जीना आ जाए तो सामने वालों को जीवनदान स्वतः मिल जायेगा।

मुनिश्री ने भिखारी और भिक्षु में अन्तर बताते हुए कहा कि जो रोटी के पीछे भागे वह भिखारी है और जिसके पीछे रोटी भागती है वह भिक्षु है। भिक्षु को भिखारी कहना या समझना नादानी है। भिक्षु के द्वार पर तो सम्राट भी सिर झुकाता है। महावीर भिखारी नहीं, भिक्षु थे।

उन्होंने आगे बताया कि जीवन में सत्य और सौंदर्य के फूल खिलना चाहिए न कि घृणा और द्वेष की गंदी नाली बहना चाहिए। जीवन धर्ममय हो, सत्यमय हो, प्रेममय हो, सुखमय हो, ऐसा कर्म करना ही मानवीय कर्तव्य है।

मुनिश्री ने बताया कि विकल्प तभी तक है जब तक संकल्प नहीं है। किसी चीज का संकल्प कर लेने से विकल्प स्वतः शांत हो जातें हैं।

□ दैनिक भास्कर
२० फरवरी ९२

## श्मशान गाँव के बीच चौराहे पर होना चाहिए

**श्मशान गाँव के बाहर नहीं, बल्कि गाँव के बीच चौराहे पर होना चाहिए। श्मशान उस जगह होना चाहिए जहाँ से हम दिन में दस बार गुजरते हैं ताकि उसे देखकर हमें अपनी मृत्यु का ख्याल बना रहे।**

इन्दौर। युवासाधक जैन संत श्री तरुणसागरजी ने कहा कि जीवन मृत्यु का अन्तिम सत्य है। जितना जन्म सत्य है उतनी ही सत्यता भरी मृत्यु होती है। यदि मनुष्य को मृत्यु का स्मरण बना रहे तो उसके जीवन में संन्यास घटित हो जाए, मृत्यु का ख्याल व्यक्ति को वासना से दूर रखता है।

जैन साधक श्री तरुणसागरजी ने श्मशान और मरघट में फर्क बताते हुए कहा कि जहां शव को दफनाया जाता है वह श्मशान है और जहाँ प्राण (आयु) हर पल घटते हैं, वह मरघट है। दरअसल हमारे महल, महल नहीं मरघट हैं क्योंकि हर व्यक्ति अपने महल मरघट में ही मरता है। आज तक कोई भी व्यक्ति श्मशान में जाकर नहीं मरा। सभी महल मरघट में ही मरते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि लोग अपने ऊंचे-ऊंचे मरघटों (महलों) को देखकर खुश होते हैं कि मेरा इतना ऊंचा मरघट है। मेरा चार मंजिल का मरघट है, तेरा तो दो ही मंजिल का है।

मुनिराजश्री ने इस बात पर जोर दिया कि श्मशान गाँव के बाहर नहीं बल्कि गाँव के बीच चौराहे पर होना चाहिए। श्मशान उस जगह होना चाहिए जहाँ से हम दिन में दस बार गुजरते हैं ताकि उसे देखकर हमें अपनी मृत्यु का ख्याल बना रहे। हम लोग बड़े चालाक हैं श्मशान गाँव के बाहर बनाते हैं जिससे कि मृत्यु को विस्मृत हो जाए। लेकिन याद रखना, आप मौत को भूल सकते हैं लेकिन मौत आपको नहीं भूल सकती है। मौत का स्मरण ही मौत का विस्मरण है।

मुनि श्रेष्ठ श्री तरुणसागरजी ने कहा कि धर्म परिभाषा नहीं, प्रयोग है। धर्म संगठन नहीं साधना है। जहां संगठन है वहाँ सम्प्रदाय है। और सम्प्रदाय सिर्फ एक अवसरवादिता है। सम्प्रदाय तोड़ने का काम करता है। धर्म जीवन की बुनियाद है। धर्म के अभाव में आदमी आदमखोर बन जाता है और धर्म के सद्भाव में आदमखोर भी आदिनाथ बन जाता है।

□ नईदुनिया
२२ फरवरी ९३

# धर्म और विज्ञान का समन्वय जरूरी है

**विज्ञान हमें आकाश में पक्षियों की तरह उड़ना सिखा सकता है, पानी में मछलियों की तरह तैरना सिखा सकता है । लेकिन धरती पर इंसान की तरह चलना नहीं सिखा सकता । धरती पर कैसे चलें ? कैसे जिएं ? यह सिर्फ धर्म सिखाता है,**

इन्दौर । प्रखर प्रवक्ता जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि धर्म और विज्ञान संपूरक हैं विघटक नहीं । मनुष्य को जितनी आवश्यकता धर्म की है, उतनी ही आवश्यकता विज्ञान की भी है । जहाँ मनुष्य को गति विज्ञान से मिलती है वहीं दिशा धर्म से मिलती है ।अकेला विज्ञान विनाशकारी सिद्ध हो सकता है अतः विज्ञान पर धर्म का अंकुश जरूरी है ।

मुनिश्री ने आगे कहा कि जैन धर्म पूर्णत वैज्ञानिक धर्म है । भगवान महावीर स्वामी 'सुपर साइन्टिस्ट' हैं । धर्म के पास केवल दिशा है गति नहीं । जबकि विज्ञान के पास गति है, दिशा नहीं । गति न हो तो जीवन में जड़ता छा जाएगी, और दिशा न हो संकट खड़ा हो जाएगा, अतः धर्म और विज्ञान का संतुलित समन्वय जरूरी है । और यही आज की सर्वोपरि माँग है ।

*मुनिश्री ने कहा कि विज्ञान का अर्थ महावीरजी की भाषा में आचरण है ।* जिस विज्ञान में आचरण है वहीं विज्ञान हमें हमसे मिला सकता है । आज के विज्ञान की बुनियाद हिंसा है । इसलिए उसके दुष्परिणाम उभरकर धीरे–धीर सामने आ रहे हैं। मुनिश्री ने विज्ञान के हिमायतों पर कटाक्ष करते हुए कहा कि, माना कि विज्ञान नें हमें टी.वी. सेट दिया, डिनर सेट दिया, टी सेट दिया, सोफा सेट दिया, डायमेंड सेट दिया लेकिन दिमाग तो अपसेट कर दिया ।

मुनिश्री ने पुरजोर शब्दों में कहा कि चाँद और एवरेस्ट की चोटी पर पहुँचना ही प्रगति नहीं है । अगर हमें पड़ोसी के साथ रहना नहीं आता । अगर हमने पड़ोसी के हृदय में प्रवेश नहीं किया तो चन्द्रलोक में प्रवेश करना व्यर्थ है । बेईमानी है । पड़ोसी के साथ कैसे रहें, कैसा व्यवहार करें यह सीख हमें धर्म से मिलती है । इसलिए धर्म सर्वोच्च है । विज्ञान हमें आकाश में पक्षियों की तरह उड़ना सिखा सकता है, पानी में मछलियों की तरह तैरना सिखा सकता है । लेकिन धरती पर इंसान की तरह चलना नहीं सिखा सकता । धरती पर कैसे चलें ? कैसे जिएं ? यह सिर्फ धर्म सिखाता है, इसलिए धर्म प्रथम और विज्ञान द्वितीय है ।

□ **चौथा संसार**
२५ फरवरी

## संत वचन से नहीं आचरण से प्रभावित करते हैं

**मुनिश्री ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जो सुख समपर्ण में है, वह अकड़ने में नहीं है । जहाँ तर्क है, वहाँ नर्क है। जहाँ समपर्ण है वहाँ स्वर्ग है । तर्क से विवाद होता है और विवाद संघर्ष का कारण है । जबकि समर्पण से संवाद होता है, संवाद से सौहार्द बढ़ता है ।**

इन्दौर । मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि संत अपने वचनों से नहीं आचरण से प्रभावित करते हैं । मनुष्य के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन वचनों से नहीं वरन् आचरण के दर्शन से आता है। वचनों में तेजस्विता आचरण द्वारा आती है । आचरण पूज्य है । आचरण वंदनीय है ।

मुनिश्री ने आगे कहा कि सच्चे संत वो है जो सत्य को जीते हैं, सत्य को भोगते हैं । शब्द के साथ खेलने वाला झूठी वाह-वाह तो लूट सकता है लेकिन आत्म दर्शन नहीं कर सकता । संत शब्द से नहीं, सत्य से खेलते हैं । साधु वह जीवित संस्था है जिससे मरणासन्न मानवता को जीवनदान तो मिलता ही है, संस्कृति भी संवरती है । संत राष्ट्र के भाग्य विधाता और समाज के कर्णधार होते हैं । ऐसे संतों से ही समाज व देश की उन्नति होती है ।

श्री तरुणसागरजी ने कहा कि भौतिक ऐश्वर्य में जीने वाला व्यक्ति सत्य के दर्शन नहीं कर सकता। सत्य क्रय-विक्रय की वस्तु नहीं, वह तो अंतरंग में उपलब्ध सहज अनुभूति है । सत्य की प्राप्ति विनम्रता और तपस्या से होती है ।

मुनिश्री ने कबीर के दाम्पत्य जीवन का उदाहरण देते हुए कहा कि आज आपके दाम्पत्य जीवन में जो बिखराव और कड़वापन है उसका मूल कारण पति अपने अहम् के कारण पत्नि का कहना नहीं मानता और पत्नि अपने को किसी की दासी मानने को तैयार नहीं है । हमारा अहम् हमें झुकने नहीं देता । मुनिश्री ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जो सुख समपर्ण में है, वह अकड़ने में नहीं है । जहाँ तर्क है, वहाँ नर्क है । जहाँ समपर्ण है वहाँ स्वर्ग है । तर्क से विवाद होता है और विवाद संघर्ष का कारण है जबकि समर्पण से संवाद होता है, संवाद से सौहार्द बढ़ता है ।

मुनिवर्य श्री तरुणसागरजी ने कहा, संपत्ति से प्रतिमाएँ तो मिल सकती है लेकिन प्रतिभाएँ नहीं मिल सकती । प्रतिभाएँ प्रकृति प्रदत्त होती है । मंदिरजी में बैठी प्रतिमा को देखकर अपनी प्रतिभा को पहचानना चाहिए ।

□ नवभारत
२६ फरवरी ९३

# मनुष्य अधूरा पैदा होता है

**पशु, पशु की तरह पैदा होता है और पशु की तरह ही मर जाता है लेकिन मनुष्य की नियति है कि वह इंसान की तरह जन्मे, देवता की तरह जिए और भगवान की तरह मरे ।**

इन्दौर । मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि संसार का सर्वोपरि धर्म हरसंभव मानव की सेवा व परोपकार है । मनुष्य परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति है । मनुष्य सृष्टि का श्रृंगार और विश्व वाटिका का उत्कृष्ट प्रसून है । मनुष्य आनंद की सुखद संभावना है । अपनी बुद्धि और प्रतिभा का उपयोग जन जन की सेवा व परोपकार तथा समाज व राष्ट्र के उत्थान में करना ही मानवता का प्रमुख लक्ष्य है ।

मुनिश्री ने कहा कि समुची प्राणी जाति में मनुष्य एकमात्र ऐसा प्राणी है जो अधूरा पैदा होता है । पशु के अधूरा पैदा होने का प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि उनका चरम विकास संभव ही नहीं है । मनुष्य अधूरा है, परमात्मा पूर्ण है, पूरा है । चरम विकास सिर्फ मनुष्य का ही संभव है । मनुष्य एक बीज की तरह पैदा होता है यदि पुरुषार्थ करता है तो बीज से वृक्ष बन जाता है, और पुरुषार्थ नहीं करता तो बीज का बीज रह जाता है और वही बीज फिर सड़ जाता है । उन्होंने कहा कि पशु, पशु की तरह पैदा होता है और पशु की तरह ही मर जाता है लेकिन मनुष्य की नियति है कि वह इंसान की तरह जन्मे, देवता की तरह जिए और भगवान की तरह मरे ।

तपोनिष्ठ संत श्री तरुणसागरजी ने कहा कि व्यक्ति एक मशाल है । मशाल की आग ही व्यक्तित्व है जब आग बुझ जाती है तो मशाल एक लकड़ी मात्र रह जाती है जो किसी के सिर फोड़ने के काम आती है ।

उन्होंने अपार जनसमूह का आव्हान करते हुए कहा कि आज मानव भय, आतंक और वैमनस्यता की जिन त्रासद परिस्थितियों से गुजर रहा है उसका मुख्य कारण आध्यात्मिक मूल्यों का अभाव है। हमारे आध्यात्मिक मूल्य ही हमें देवत्व तक ले जा सकते हैं जहाँ अनन्त आनंद की प्राप्ति होती है, अध्यात्म और धर्म नितान्त वैयक्तिक है ।

□ **नईदुनिया**
२७ फरवरी ९३

# धर्म के दुश्मन नास्तिक नहीं, ठेकेदार हैं

**आज खजाने को चोरों से नहीं, पहरेदारों से खतरा है। देश को दुश्मनों से नहीं गद्दारों से खतरा है और धर्म को दुश्मनी से नहीं, ठेकेदारों से खतरा है।**

इन्दौर। सुप्रसिद्ध वक्ता श्री तरुणसागरजी ने कहा कि धर्म के दुश्मन नास्तिक नहीं बल्कि तथाकथित धर्म के ठेकेदार हैं। भगवान को जितना बदनाम तथाकथित धार्मिक नेताओं ने किया है उतना नास्तिकों नहीं किया। वे लोग जो धर्म को अपने घर का व्यापार समझते हैं और अपने आपको ठेकेदार समझते हैं धर्म की आड़ में अपना उल्लू सीधा करते हैं, धर्म के जानी दुश्मन हैं, ऐसे लोगों को धर्म से नहीं अपने स्वार्थों से मतलब है।

कविहृदय मुनिश्री तरुणसागरजी महाराज ने अपने कवि हृदय का परिचय देते हुए अत्यन्त मार्मिक शब्दों में कहा कि आज खजाने को चोरों से नहीं, पहरेदारों से खतरा है। देश को दुश्मनों से नहीं गद्दारों से खतरा है। मुनिश्री ने लोगों के आग्रह पर अपनी बहुचर्चित कृति "चपल मन" की कुछ चुनिंदा कविताएँ भी सुनाई जिससे धर्म सभा में एक खुशी और हंसी लहर दौड़ गई।

मुनिश्री ने कहा कि यदि हमें वर्धमान बनना है तो अपने वर्तमान को सुधारना होगा। जो वर्तमान में जीता है वही वर्धमान बनता है। वर्तमान ही हमारा है क्योंकि भूत मृत है और भविष्य आजन्मा। मनुष्य की मुट्ठी में केवल वर्तमान है अगर वर्तमान का उपयोग वर्तमान के लिए हो जाए तो आज ही वर्धमान बन जाए। अभी हम वर्तमान का उपयोग आती अतीत की स्मृतियों में करते हैं या भविष्य के सपनों में।

मुनिश्री ने श्रमण संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यही वह संस्कृति है जो पशु को परमेश्वर, कंकर को तीर्थकर, जानवर को जगदीश और जिंद को जिनेन्द बनाती है। श्रमण संस्कृति भूल भटके, गुमराह इन्सानों के लिए मार्ग प्रदर्शक का काम करती है और जीवन क्रान्ति का मंगलाचरण कौनसा है ? इसका पाठ पढ़ाती है। श्रमण संस्कृति त्याग और संयम की संस्कृति। श्रमण संस्कृति सारे विश्व को एक इकाई मानकर उसमें चेतना और शक्ति की ज्योति जगाती है।

□ **नईदुनिया**
२९ फरवरी ९३

# हिन्दुस्तान को हिन्दू की नहीं, आदमी की जरूरत है

**जब मन में धर्म बसता है तो हम अपने जानी दुश्मन का भी अहित करने की नहीं सोचते, लेकिन जब मन से धर्म निकल जाता है तो हम अपने बाप की हत्या करने में नहीं हिचकते हैं। यही धर्म और अधर्म का फल है।**

इन्दौर। परम प्रभावक मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि हिन्दुस्तान को हिन्दू की नहीं, आदमी की जरूरत है। इस देश में हिन्दू तो बहुत हैं, मुसलमानों की भी कमी नहीं है, जैन- सिख भी काफी हैं, लेकिन आदमी ढूंढे नहीं मिलता। देश में कमी है तो सिर्फ आदमी की। अगर राष्ट्र को उन्नत बनाना है तो हिन्दु-मुस्लिम के आत्मघाती लेबलों को उतार फेंकना होगा।

मुनिश्री तरुणसागरजी ने धर्म पर चर्चा करते हुए कहा कि धर्म मंदिर और मस्जिद मे नहीं अपितु मनुष्य के मन में है। मंदिर-मस्जिद धर्म के साधन तो हो सकते हैं लेकिन साध्य नहीं हो सकते। साध्य तो स्वयं मनुष्य का मन है। जब मन में धर्म बसता है तो हम अपने जानी दुश्मन का भी अहित करने की नहीं सोचते, लेकिन जब मन से धर्म निकल जाता है तो हम अपने बाप की हत्या करने में नहीं हिचकते हैं।

मुनिश्री ने आगे कहा कि आपसी वैमनस्यता हिंसा को जन्म देती है और हिंसा विकृत मन की उपज है। हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ न सिर्फ व्यक्ति को पतनोन्मुखी बनाती है बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र को कमजोर भी बनाती है तथा प्रभावित करती है।

उन्होंने बताया कि आत्मसुख के लिए विषय सुख का त्याग जरूरी ही नहीं अनिवार्य भी है। इन्दिय सुख तो उस तलवार की धार पर पड़े शहद की भांति होता है जिसे लालच करके व्यक्ति चाटता तो है लेकिन हर क्षण उसे जान का खतरा बना रहता है। इन्दियों और मन का गुलाम व्यक्ति जीवन भर दूसरों की दासता करता है और अन्तिम क्षणों में कुत्ते की मौत मरता है। इन्द्रियाँ बहिर्मुखी है, जबकि परमात्मा की यात्रा अन्तरमुखी होने से शुरू होती है। रसना और वासना का दास व्यक्ति न सिर्फ नैतिक व धार्मिक मर्यादाओं का उल्लंघन करता है अपितु इनकी संपूर्ति के लिए जघन्य से जघन्य अपराध करने से भी नहीं हिचकता। ईश्वर इन्द्रियों से परे है। इन्द्रियों से ऊपर उठकर ही ईश्वर सुख को पाना संभव है।

□ **दैनिक भास्कर**
६ मार्च ९३

# आखिर धर्म है क्या ?

**धर्म है मन में, मन की सरलता में, मन की सहजता में, मन की पवित्रता में, धर्म बाहर में नहीं, स्वयं के भीतर है । मंदिर और शास्त्र धर्म नहीं धर्म के साधन है । भगवान महावीर कहते हैं धर्म को मत खोजो, स्वयं को खोजो तो धर्म स्वतः मिल जाएगा । धर्म तो प्रतिबिम्ब की तरह है, प्रतिबिम्ब को पकड़ने जाओगे तो निराशा ही हाथ लगेगी । अपने आपको पकड़ लो तो प्रतिबिम्ब स्वतः पकड़ में आ जाएगा ।**

जब मुझसे कोई पूछता है कि धर्म क्या है ? तो मैं कहता हूँ कि हृदय की सरलता ही धर्म है । धर्म ऊपर से थोपी जाने वाली वस्तु नहीं है । वह तो अन्तस की निर्मलता से उद्भूत सहज उपलब्धि है । धर्म परिधि का परिवर्तन नहीं, अन्तस् की क्रान्ति है । धर्म परिधि पर अभिनय नहीं, केन्द पर श्रम है । धर्म परम्परा नहीं, विद्रोह है। धर्म प्रदर्शन नहीं, आत्मदर्शन है। धर्म खिलवाड़ की वस्तु नहीं, आत्मकल्याण का साधन है ।

धर्मव्याख्या नहीं, व्याप्ति है। परिभाषा नहीं, प्रयोग है। धर्मअभिव्यक्ति नहीं, अनुभूति है। धर्म मृण्मय नहीं , चिन्मय है । धर्म परिवर्तन नहीं, प्रवर्तन है । धर्म कथ्य नहीं, तथ्य है । धर्म सामूहिक नहीं, वैयक्तिक है । धर्म बला नहीं, कला (जीवन जीने की)है । धर्महीन मनुष्य का जीवन वैसा ही है, जैसे बकरी के गले में रहने वाला स्तन। उसमें दूध नहीं होता ।

धर्म का अर्थ है, जीवन की समग्रता को धारण करना । जीवन की नींव धर्म है । धर्म की बुनियाद पर जीवन की इमारत खड़ी होती है । धर्म के अभाव में आदमी अधूरा है । अपूर्ण है । धर्म के अभाव में आदमी आदमखोर बन जाता है ।

धर्म नारा नहीं अपितु एक जीवन है । जीवन की एक तर्ज है, जो केवल जी कर पहचानी जा सकती है । धर्म विराट है । उसकी सत्ता त्रिकालिक व सार्वभौमिक है । मनुष्य का अस्तित्व धर्म से है । धर्म मनुष्य की धड़कन है जीवन है ।

धर्म साधना है, संगठन नहीं । जहाँ संगठन है वहाँ संप्रदाय है धर्म नहीं । संप्रदाय कलह के कारण है और धर्म कल्याण का कर्ता है । धर्म का उदय अनाग्रह की पृष्ठभूमि पर ही होता है, किन्तु धर्म की आत्मा जब संप्रदायवाद के कटघरे में कैद हो जाती है तो विग्रह की, विद्वेष की चिंगारियाँ उछलने लगती है । संप्रदाय तोड़ता है जबकि धर्म टूटे हुए हृदयों को जोड़कर एक दूसरे के बीच में तादाम्य स्थापित करता है । संप्रदाय कैंची का काम करता है और धर्म सुई का ।

धर्म एक है, स्वयं में पूर्ण है । उसका एक अंश भी जीवन का कायाकल्प करने में समर्थ है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सूर्य की एक किरण विश्व में व्याप्त

अंधकार को नष्ट करने में समर्थ है। अग्नि की एक चिंगारी घास के ढेर को भस्म करने में समर्थ है और अमृत की एक बूंद समस्त व्याधियों के उपशमन करने में समर्थ है। कल्पवृक्ष छोटा हो या बड़ा मन की मुराद तो पूरा करेगा ही। धर्म पूर्ण हो या आंशिक जीवन में धन्यता तो लाएगा ही।

धर्म तो सतत् है सूर्य की भांति स्पष्ट है लेकिन आँखें खोलों तो मालूम पड़े। सूरज के आ जाने पर भी यदि आदमी आँख न खोले तो उसके लिए दिन भी रात है। धर्म तो हमारी स्वांस– स्वांस में बसा है, रोम–रोम में बसा है बस उसे खोजने का साहस और संकल्प चाहिए। धर्म स्वयं के रक्त की बूंद–बूंद में बसा है बस निखरने/परखने की जरुरत है

धर्म शास्त्रों में नहीं, क्योंकि शास्त्र तो मृत है और धर्म है जीवन्तरूप है। धर्म संप्रदाय में नहीं, क्योंकि संप्रदाय का अर्थ संगठन है, जबकि धर्म वैयक्तिक है। निज की अत्यन्त निकटता है। धर्म मंदिर में नहीं क्योंकि मंदिर तो ईंट, मिट्टी, गारा का जोड़ मात्र है। तो फिर धर्म कहाँ है ?

धर्म है मन में, मन की सरलता में, मन की सहजता में, मन की पवित्रता में, धर्म बाहर में नहीं, स्वयं के भीतर है। मंदिर और शास्त्र धर्म नहीं धर्म के साधन है। भगवान महावीर कहते हैं धर्म को मत खोजो, स्वयं को खोजो तो धर्म स्वतः मिल जाएगा। धर्म तो प्रतिबिम्ब की तरह है, प्रतिबिम्ब को पकड़ने जाओगे तो निराशा ही हाथ लगेगी। अपने आपको पकड़ लो तो प्रतिबिम्ब स्वतः पकड़ में आ जाएगा।

धर्म के माने प्रेम, करुणा और सद्भावना है। उसका प्रतीक फिर चाहे राम हो या रहीम, कृष्ण हो या करीम, बुद्ध हो या महावीर सबकी आत्मा में धर्म की एक ही आवाज होगी। धर्म दीवार नहीं, द्वार है लेकिन दीवार जब धर्म बन जाती है तो अन्याय व अत्याचार को खुलकर खेलने का अवसर मिल जाता है। फिर चाहे वह दीवार मंदिर की या मस्जिद की ही क्यों न हो।

पानी का एक नाम जीवन है दूसरा विष भी है, धर्म भी दो प्रकार का काम करता है वह जीवन का भी काम करता है और विष का भी काम करता है, जब हम धर्म का उपयोग स्वयं के लिए करते हैं, तब धर्म जीवन का द्वार का काम करता है और जब दूसरों के लिए करते हैं तो विष का। दीवार का काम करता है। धर्म का उपयोग स्व निर्माण के लिए होना चाहिए।

धर्म किसी के बाप की बपौती नहीं, पैतृक सम्पत्ति नहीं। धर्म क्रय–विक्रय की स्थूल वस्तु भी नहीं, जिसे खरीदा या बेचा जा सके। धर्म तो वह है जो जिया जाए। जितनी कषाएं मन्द है, बस उतना ही धर्म है और उतने ही अंशों में हम धार्मिक हैं ऐसा समझना चाहिए।

□ नईदुनिया ७ मार्च ९३
रविवारिय परिशिष्ट

# संन्यास सत्य के लिए हो, सत्ता के लिए नहीं

**जीवन का निर्वाह नहीं, निर्माण करो। निर्वाह सरल है वह पशु-पक्षी भी कर लेते हैं, लेकिन जीवन-निर्माण की कला सीखना सहज नहीं है। जो जीवन निर्माण की कल सीख लेता है, वही जीने का आनंद उठा पाता है।**

इन्दौर। सुप्रसिद्ध वक्ता जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि जीवन का निर्वाह नहीं, निर्माण करो। जीवन निर्वाह एक बात है और निर्माण दूसरी बात है। निर्वाह सरल है वह पशु- पक्षी भी कर लेते हैं, लेकिन जीवन-निर्माण की कला सीखना सहज नहीं है। जो जीवन निर्माण की कला सीख लेता है, वही जीने का आनंद उठा पाता है, बाकी लोग तो घसीट-घसीट कर जीते हैं।

मुनिश्री तरुणसागरजी ने आगे कहा कि मन का प्रदूषण सबसे बड़ा प्रदूषण है। उन्होंने एक उदाहरण को रूपायित करते हुए कहा कि संसार और संन्यास एक साथ नहीं रह सकते। संन्यास के लिए संसार का परित्याग जरूरी है। संन्यास सत्य के लिए होना चाहिए। सत्ता के लिए नहीं। सत्ता हथियाने के लिए लिया गया संन्यास नहीं, आत्म प्रवंचना है। स्वयं के साथ धोखा है, छल है। सत्य के प्रति प्यास ही संन्यास है। संन्यासी सत्य का जीवन जीता है न कि दिखावे का।

मुनिश्री ने कहा कि मानव जीवन दुष्कर है। मानवता और महानता इससे भी दुष्कर है। स्वयं के अस्तित्व व जीवन के समस्त आनंद को दांव पर लगाकर ही महानता को प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य होना ही पर्याप्त नहीं, मनुष्यता भी आनी चाहिए जीवन में। आज मानव तो बहुत हैं लेकिन उनमें मानवता नहीं है। इसलिए देश में भय और आंतक की स्थितियाँ बनी हुई है। उन्होंने कहा कि मानव महान है। उसके पास बुद्धि का वैभव है। वह कोयलों की खान में से हीरे निकाल सकता है। मिट्टी ओर राख का सोना बना सकता है। मनुष्य एक कलाकार है लेकिन उसे अपनी कला का प्रयोग मिट्टी के घरोंदे बनाने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि आत्मा को परमात्मा भी बनाना चाहिए।

उन्होंने कहा कि जीवित धर्म तो वह है जिसकी धमनियों में अहिंसा, दया और प्रेम की धारा बहती है। पवित्र जीवन की कला का नाम ही धर्म है।

□ नईदुनिया
८ मार्च १९९३

# परिचय व परिग्रह मन की चंचलता के कारण

**लक्ष्य विहीन जीवन उस कोल्हू के बैल के सदृश है जिसका चलना तो बहुत होता है लेकिन पहुँचना कुछ भी नहीं होता । बिना लक्ष्य के मंजिल नहीं, मरघट मिलता है ।**

इन्दौर । मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि मन विचारों का पुलिंदा है । मन की चंचलता का कारण परिचय और परिग्रह है । अति परिचय और अति परिग्रह से मन अति चंचल हो जाता है। परिचय और परिग्रह से मन के सागर में विचारों/विकल्पों की तरंगे उठती है जिससे मन व्यग्र हो उठता है और मानसिक शांति भी भंग हो जाती है ।

मुनिश्री ने आगे कहा कि मानव जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष है । मोह का अभाव ही मोक्ष है। लक्ष्य विहीन जीवन उस कोल्हू के बैल के सदृश है जिसका चलना तो बहुत होता है लेकिन पहुँचना कुछ भी नहीं होता । हमारी जिन्दगी कोल्हू के बैल की भांति है हम जीवन भर चलते हैं लेकिन कहीं नहीं पहुँचते । बिना लक्ष्य के मंजिल नहीं, मरघट मिलता है ।

जब तक हृदय पवित्र नहीं होगा तब तक जीवन में पवित्रता आ नहीं सकती और जब तक जीवन में पवित्रता नहीं आयेगी तब तक आत्मा में धर्म का अवतरण हो नहीं हो सकता । मन की अपवित्रता धर्म की तेजस्विता को दबा देती है पवित्र मन की पवित्र जीवन का कारण है । मन और जीवन की मलिनता से धर्म की आत्मा प्रभावित होती है। वास्तविक आनंद त्याग और संन्यास में है धन संग्रह और विलासिता में नहीं। जैसे दूर के ढोल सुहावने लगते है, वैसे ही धनवान दूर से सुखी नजर आते हैं ।

मुनिश्री ने आगे कहा कि भारतीय संस्कृति साधना प्रधान संस्कृति है । यहाँ भोग को नहीं, योग को, राग को नहीं वैराग को, समादर मिलता है । हमारे यहाँ पूज्यता के मापदंड सत्ता, अधिकार लक्ष्मी और विलासिता के संसाधन नहीं, बल्कि समत्त्व की साधना है । सद्भाव, समन्वय और संस्कार युग की सर्वोपरि मांग है ये ऐसे जीवन मूल्य है जिससे संस्कृति और सभ्यता को जीवनदान मिलता है, सौहार्द की भावना को बल मिलता है ।

□ नवभारत
९ मार्च ९३

## प्रतीक्षा प्रेम की परीक्षा है

**तोड़ने वाला क्षुद्र है और जोड़ने वाला महान होता है। कैंची तोड़ने का काम करती है इसलिए दर्जी के पैरों तले उपेक्षित पड़ी रहती है और सुई जोड़ने का काम करती है इसलिए दर्जी अपनी टोपी में लगाकर रखता है।**

इन्दौर। पूज्य मुनिश्री १०८ तरुणसागरजी ने कहा कि प्रतीक्षा प्रेम और धर्म की परीक्षा है। प्रतीक्षा एक साधना है , एक तपस्या है। प्रतीक्षा वही कर सकता है जिसमें धैर्य हो। परमात्म दर्शन के अधिकारी वे ही हैं जो धैर्य और संकल्प के धनी है। चंचल चित्त व्यक्ति ईश्वर- दर्शन लाभ से वंचित रह जाते हैं।

मुनिश्री ने आगे कहा कि कैंची की भांति समाज में अलगाव कतरब्योत का काम करना दुष्ट कर्म है। और सुई की भांति जोड़ने का प्रयत्न करना शुभ कर्म है। तोड़ने वाला क्षुद्र है और जोड़ने वाला महान होता है। कैंची तोड़ने का काम करती है इसलिए दर्जी के पैरों तले उपेक्षित पड़ी रहती है और सुई जोड़ने का काम करती है इसलिए दर्जी अपनी टोपी में लगाकर रखता है। बिखरते समाज व गुम होते आदर्शों तथा टूटते नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करना मानवीय कर्तव्य है।

उन्होंने आँख दो, कान दो, हाथ दो, किन्तु जीभ एक क्यों ? का रहस्य उद्घाटित करते हुए कहा कि हम जितना देखें, जितना सुनें, जितना करें और जितना चलें उससे कम बोलना चाहिए। अभी हम देखते कम हैं, बोलते ज्यादा हैं, करते कम हैं, बोलते ज्यादा है इसलिए सुखी कम हैं दुखी ज्यादा है। करना कम, बोलना ज्यादा ही समस्याओं की जड़ तथा दुख का कारण है। कर्तव्य पालने की चीज है न कि फैलाने की। बिना फल की आशा के कर्म करना चाहिए क्योंकि कर्म ही पूजा है।

मुनिश्री ने आगे बताया कि आज के इस आपाधापी, दौड़-धूप व अहंवादी के युग में अध्यात्म व धर्म का मार्ग ही समुचि मानवजाति के लिए त्राण का मार्ग सिद्ध हो सकता है। धर्म ही वह शाश्वत तत्व है जो सदा से है और सदाकाल तक रहेगा। जैन धर्म पुनः जीवन्त धर्म बन सकता है बशर्ते हम उसे जीवन में पूर्णयता आत्मसात् कर सकें।

□ स्वदेश
११ मार्च ९३

## समस्याओं का समाधान
## अणुबमों में नहीं,अणुव्रतों में है

**धर्म सिद्धान्त नहीं, प्रयोग है। प्रक्रिया है। धर्म वही जीवित रहता है जिसके सिद्धान्त धर्म की किताबों में नहीं, बल्कि प्राणियों के जीवन में जीवित रहते हैं।**

इन्दौर। जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि अहंकार पतन का द्वार है। अहंकार जीवन को कठोर बनाता है और कठोरता स्वयं के बिखराव का दूसरा नाम है। अहंकारी व्यक्ति की दशा घंटाघर पर बैठे उस बन्दर के समान है जो घंटाघर की ऊंचाई को अपनी ऊंचाई समझता है। अहंकारी व्यक्ति जब रिक्त रहता है। अहम् की भावना व्यक्ति में अकड़ पैदा करती है, अकड़ से आदमी पाप की गिरफ्त में आ जाता है।

मुनिश्री ने आगे बताया कि जैन धर्म भावना प्रधान धर्म है। धर्म की इमारत भावों की बुनियाद पर खड़ी होती है। कितनी पूजा की यह महत्वपूर्ण नहीं है, किन भावों से पूजा की यह महत्वपूर्ण है। जैन धर्म में खेल भावों का है, भगवान का नहीं। बदलना है तो अपने भाव बदलो। भाव बदलते ही भव भदल जाता है। उन्होंने कहा कि धर्म सिद्धान्त नहीं, प्रयोग है। प्रक्रिया है। धर्म वही जीवित रहता है। जिसके सिद्धान्त धर्म की किताबों में नहीं, बल्कि प्राणियों के जीवन में जीवित रहते हैं। सिद्धान्त महत् विचार नहीं होते, वे व्यावहारिक भी होते हैं।

संतश्री तरुणसागरजी ने बताया कि ईर्ष्या की आग अति गहरी आतंरिक होती है। इससे मनुष्य अपने कल्याण की अपेक्षा दूसरे का अहित एवं अशुभ की ज्यादा चिन्ता करता है और इस प्रकार अपने लिए भावी दुखों को बुलावा देता है। याद रखो दूसरों के लिए कुआ खोदने से पहले अपने लिए खाई खुद जाती है।

उन्होंने कहा कि अहिंसा सिर्फ संन्यासियों का साध्य नहीं, वह तो मानवीय जीवन में करुणा की अन्तःसलिला है। अहिंसा जगत माता है। अहिंसा कायरता नहीं अवधारणा है अहिंसा युग की मांग है। विश्व की ज्वलंत समस्याओं का समाधान अणुबमों में नहीं अणुव्रतों में है। जैन दर्शन में वर्णित अणुव्रतों की साधना हमारी इच्छा शक्ति को प्रबल बनाती है।

□ चेतना
१३ मार्च ९३

# धर्म बुजुर्गों की बपौती नहीं, युवाओं की अमानत भी है

**ईश्वर के द्वार पर याचना नहीं, प्रार्थना होती है । प्रार्थना जीवन की खुराक है । प्रार्थना सर्वोपरि ऊर्जा है ।**

इन्दौर । जैन मुनिश्री तरुणसागरजी महाराज ने कहा कि जीवन एक कला है जो व्यक्ति इस कला को जान लेता है वह सुखपूर्वक जीवन यापन कर सकता है। कलाहीन जीवन वरदान नहीं, अभिशाप है । हमें सब कुछ आता है सिवाय जीने के । लेकिन याद रखना चाहिए जिसे जीना नहीं आता उसे मरना भी नहीं आ सकता। जीने की कला ही मृत्यु की कला है।

मुनिश्री तरुण सागरजी ने आगे कहा कि आततायी हिंसा का सामना करने में सिर्फ अहिंसा ही समर्थ है । हिंसा अविचार, अज्ञान और अनास्था की परिणति है। जबकि अंहिसा का मूल मंत्र विवेक/ विचार और आस्था से उत्पन्न होता है । विश्व मे व्याप्त विनाश के घटाटोप के बीच सिर्फ अहिंसा व सत्य की जीवन शैली ही मानव को महाविनाश से बचा सकती है । अहिंसा का सिद्धान्त महत्त वचनों तक ही नहीं, अपितु व्यवहार में भी परिलक्षित होना चाहिए ।

उन्होंने कहा कि धर्म केवल बुजुर्गों की बपौती नहीं, युवाओं की अमानत भी है । धर्म बुढ़ापे की औषध नहीं वरन् युवा होने का टॉनिक है । धर्म सदा युवा है, लेकिन जब बूढ़े लोग उसे धारण कर लेते हैं तो धर्म भी बूढ़ा हो जाता है । मंदिर में जब युवा जाते हैं तो मंदिर भी युवा हो जाता है । युवा होने का मतलब प्रगति और कर्म के लिए विद्रोह कर देना है ।

मुनिश्री ने अपनी प्रखर शैली, सरस प्रवचन प्रवाह में कहा कि हम मंदिर में जाकर भिखारियों की तरह याचना न करें । ईश्वर के द्वार पर याचना नहीं, प्रार्थना होती है । प्रार्थना जीवन की खुराक है । प्रार्थना सर्वोपरि ऊर्जा है । प्रार्थना शांति व आनंद का उपहार है । मंदिर में जाकर क्षुद्र व भौतिक वस्तु न मांगकर उस विराट परमात्मा का अपमान न करें । ईश्वर जगत सम्राट है और सम्राट से साम्राज्य ही मांगना श्रेष्ठ है । उन्होंने कहा कि व्यक्ति मंदिर में जाप करता है और बाहर पाप करता है, इसलिए वह इंसान से भगवान नहीं बन सकता । पाप व व्यसन में लिप्त व्यक्ति परमात्मा से साक्षात्कार नहीं कर सकता ।

□ इन्दौर समाचार
१४ मार्च ९३

# प्रार्थना और प्रेम में नौकर नहीं चलते

**संन्यास का अर्थ परिवार छोड़ना नहीं अपितु सारे संसार को परिवार बना लेना है । जब हम एक छोटे से आंगन को छोड़ते हैं तो सारा आकाश तुम्हारा आंगन हो जाता है ।**

इन्दौर । प्रखर प्रवक्ता मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि राष्ट्र की सुरक्षा व्यक्ति की सुरक्षा है । हमारा उच्च आचरण राष्ट्र को उन्नत बनाता है । राष्ट्र अपने आप में एक बहुत बड़ा मंदिर है । इस मंदिर को खण्ड-खण्ड होने से बचाने का हर भारतीय का कर्तव्य है । राष्ट्र की किसी भी सम्पत्ति को क्षति पहुँचाना अपने अस्तित्व को क्षति पहुँचाने के समान है । वे लोग जो देश का खाते हैं लेकिन बजाते नहीं है। देशद्रोही है गद्दार हैं । आज देश को दुश्मनों से नहीं अपितु ऐसे ही गद्दारों से खतरा है ।

कविहृदय युवासंत श्री तरुणसागरजी ने कहा कि संन्यास का अर्थ परिवार छोड़ना नहीं अपितु सारे संसार को परिवार बना लेना है । जब हम एक छोटे से आंगन को छोड़ते हैं तो सारा आकाश तुम्हारा आंगन हो जाता है । एक परिवार को छोड़ते हैं तो सारा संसार तुम्हारा परिवार हो जाता है। उन्होंने कहा, संत अपनी सुरक्षा नहीं करते इसलिए संतों की सुरक्षा का ख्याल पूरा समाज रखता है। छोटा बालक अपने आपको असुरक्षित छोड़ देता है तो उसकी सुरक्षा का ध्यान पूरा परिवार रखता है । असुरक्षा में ही सुरक्षा है ।

मुनिश्री ने कहा कि धर्म तर्क का नहीं, श्रद्धा का विषय है । आस्था का विषय है । उन्होंने पुरजोर शब्दों में कहा कि अभी हमारी आस्था नास्ता पर है, इसलिए परमात्मा से कोई वास्ता नहीं है । आस्था अंतरंग का विषय है मन मेंश्रद्धा हो तो तर्कनहीं उठता । तर्क वहाँ उठता है जहाँ श्रद्धा में कमी होती है ।

मुनिश्री ने कहा कि प्रेम और विनय का चौली-दामन का सम्बन्ध है । प्रेम सौदा नहीं है। प्रेम का मूल्य बलिदान से चुकाना पड़ता है प्रेम और प्रार्थना में नौकर नहीं चलते, ये दोनों ऐसे हैं कि व्यक्ति को स्वयं ही करना पड़ता है । ये दोनों नितान्त वैयक्तिक है । व्यक्तिगत है । प्रेम वासना मूलक नहीं, भावना मूलक होना चाहिए।

□ **नईदुनिया**
१५ मार्च ९३



प्रवचन सुनते श्रोतागण छावनी में

मुनिश्री विभिन्न मुद्राओं में











रे चपल मन....







पत्रकार वार्ता को सम्बोधित करते हुए

# मृत्यु नहीं, जीवन आश्चर्य है

**आज सारा विश्व बारूद के ढेर पर बैठा हुआ अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है । मनुष्य खतरों के बीच में जी रहा है । मनुष्य का जीवन खतरों का पर्याय बन गया है ।**

इन्दौर । जैन संतश्री तरुणसागरजी महाराज ने कहा कि सत्ता और सम्पत्ति की लालसा व्यक्ति पतनोन्मुखी बना देती है । सत्ता और सम्पत्ति की लालसा मनुष्य को प्रेरणा देती है कि वह दूसरे के अधिकार, सुख-संपदा व स्वतंत्रता का अपहरण करे तथा अपना जीवन सुखमय बनाए । लेकिन याद रखें सुख का आधार सत्ता व सम्पत्ति नहीं अपितु सत्य का आचरण है । दूसरे के अधिकारों को छीनना न सिर्फ गलत है अपितु दंडनीय अपराध भी है ।

मुनिश्री ने बम्बई में हुए भीषण बम विस्फोट का जिक्र करते हुए कहा कि आज सारा विश्व बारुद के ढेर पर बैठा हुआ अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है । मनुष्य खतरों के बीच में जी रहा है । मनुष्य का जीवन खतरों का पर्याय बन गया है । किस क्षण कहाँ, क्या घटित हो जाए कुछ कहा नहीं जा सकता । आज मृत्यु नहीं जीवन आश्चर्य है । एक तीस वर्ष का युवक अचानक मृत्यु, मरण को प्राप्त हो जाता है तो लोग आश्चर्य करते हैं कि इतनी जल्दी "मर" गया, जबकि वास्तविकता तो यह हैकि वह इतनेदिन जीवित रहा कैसे। खुले आकाश तले तूफान और तेज हवाओं के बीच एक दीप जल रहा था एक तेज हवा का झोका आया जिससे दीप बुझ गया, दीप का बुझना आश्चर्य नहीं आश्चर्य यह है कि इतनी देर जलता रहा कैसे ? आश्चर्य जीवन है क्योंकि मृत्यु तो निश्चित है ।

मुनिश्री ने कहा कि ध्यान से मानसिक शांति तो मिलती ही है । जीवन में व्याप्त विषमताओंसे मुक्ति भी मिलती है । ध्यान परम्परा नहीं, परमोपलब्धि है । ध्यान का अर्थ पलक खोलने की विधि है । पलक खुल जाये तो अंधेरा खो जाता है आँख हो तो अंधेरे में भी चला जा सकता है लेकिन यदि आँख न हो तो प्रकाश में भी चलना मुश्किल हो जाता है । ध्यान हो तो परमात्मा मिलन सहज है ।

□ लोकस्वामी
१६ मार्च ९३

# धर्म और विज्ञान

**धर्म जीवन है और विज्ञन जीवन की गति है। धर्म जीवन का प्रयोग है और विज्ञान जीवन की प्रयोगशाला है। धर्म जीवन की बुनियाद है और विज्ञान जीवन का शिखर है। धर्म जीवन की शक्ति है और विज्ञान जीवन की अभिक्रांति है। धर्म आचार उद्दीपक है और विज्ञान विचार परिशोधक है। धर्म शाश्वत् है और विज्ञान समय की आवश्यकता है।**

*किसी ने पूछा था – धर्म और विज्ञान संपूरक हैं या विघटक ?* उत्तर स्पष्ट है – धर्म और विज्ञान पूरक है। जो धर्म और विज्ञान को विघटक मान लेते हैं वे सूर्य सत्य को नकारते हैं। मनुष्य को जीवन में जितनी आवश्यकता धर्म की है उतनी ही विज्ञान की थी। मनुष्य को गति विज्ञान से मिलती है जबकि धर्म उसे दिशा प्रदान करता है। धर्म के पास दिशा है पर गति नहीं, जबकि विज्ञान के पास गति है किन्तु दिशा नहीं। जीवन में गति न हो तो जड़ता छा जाएगी और दिशा के अभाव में गतिशीलता, जीवन में संकट खड़ा कर देगी। अतः जीवन में धर्म और विज्ञान का संतुलित समन्वय आज की सर्वोपरि आवश्यकता है।

किसी भाई ने पूछा – धर्म बड़ा है या विज्ञान ?

मैंने प्रश्नकर्ता से प्रति प्रश्न पूछ लिया – माँ बड़ी है या बेटा ? उनका उत्तर था – माँ। आपका भी यही उत्तर हो सकता है। लेकिन यह उत्तर अधूरा है। 'माँ बड़ी है' यह कथन स्थूल है। स्थूल–दृष्टि का फल है। अनेकान्त शैली में बेटा बड़ा है क्योंकि माँ को "माँ" यह संज्ञा देने वाला बेटा ही है। पुत्र के जन्मोपरान्त ही किसी भी स्त्री को माँ इस संज्ञा से संबोधित किया जाता है। पुत्र जन्म के पूर्व वह किसी की पत्नि थी, माँ नहीं। दुनिया कहती है माँ ने बेटे को जन्म दिया। तब महावीर एक शाश्वत सत्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं, कि – नहीं। माँ ने पुत्र को ही जन्म नहीं दिया, पुत्र ने भी माँ को जन्म दिया है। धर्म बड़ा या विज्ञान ? बस इसका भी यही उत्तर है। कदाचित धर्म बड़ा है कदाचित विज्ञान बड़ा है। अपने–अपने स्थान पर दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। जीवन को उन्नत बनाने में दोनों की अहम् भूमिका होती है।

हाँ, इतना अवश्य है कि अकेला विज्ञान विनाशकारी सिद्ध हो सकता है अतः विज्ञान पर धर्म का अंकुश जरुरी है। जैसे बेटे पर बाप का अंकुश बेटे के जीवन में विकास के नये–नये द्वार खोलता है वैसे ही धर्म द्वारा नियंत्रित विज्ञान जीवन में सर्वतोमुखी विकास करने में समर्थ होता है। विज्ञान एक शक्ति है और धर्म उस शक्ति का उपयोग करने की विधि का नाम है। जैसे अंकुश रहित हाथी और लगाम रहित घोड़ा बेकाबू हो जाता है वैसे ही धर्म रहित विज्ञान उच्छंखल हो जाता है।

एल्विन टॉफसर के ये शब्द कि यह आज के वैज्ञानिक (Scientist ) से अगर पूछा जाए कि उसका लक्ष्य क्या है ? तो वह कहता हुआ पाया जाएगा कि एक ऐसी रेलगाड़ी में बैठे हैं जिसका एक्सिलेटर (गति उद्दीपक) तो निरंतर दबता जा रहा है किन्तु जिसके ब्रेक पर कोई काबू नहीं है। पता नहीं आगे क्या होने वाला है ? इसका अर्थ स्पष्ट है कि अगर जीवन में सुख और शांति को पाना चाहते हैं तो बिना ब्रेक के विज्ञान पर धर्म का ब्रेक लगाना निहायत जरुरी है।

धर्म जीवन है और विज्ञान जीवन की गति है। धर्म जीवन का प्रयोग है और विज्ञान जीवन की प्रयोगशाला है। धर्म जीवन की बुनियाद है और विज्ञान जीवन का शिखर है। धर्म जीवन की शक्ति है और विज्ञान जीवन की अभिक्रांति है। धर्म आचार उद्दीपक है और विज्ञान विचार परिशोधक है। धर्म शाश्वत् है और विज्ञान समय की आवश्यकता है। धर्म जब भौतिक विज्ञान नहीं था तब भी था और जब भौतिक विज्ञान नहीं होगा तब भी रहेगा। धर्म की सत्ता त्रैकालिक है। धर्म का अपर नाम वितराग-विज्ञान भी है। जब जीवन में विज्ञान मुख्य और धर्म गौण हो जाता है तब जीवन कितना फीका व नीरस हो जाता है इसको समझने के लिए निम्न उदाहरण अत्यंत सटीक होगा।

अमेरिका में एक व्यक्ति ने पाँच सितारा होटल की पंद्रहवी मंजिल से कूदकर आत्महत्या कर ली। उसने मरने से पूर्व पत्र में लिखा "मैंने जो चाहा मिल गया। अच्छी शिक्षा अच्छी पत्नि अच्छी नौकरी सब कुछ मिल गया। अब मेरे जीवन में जीने की कोई चाह नहीं है अतः मैं आत्महत्या कर रहा हूँ" उसकी अभिलाषित वस्तुओं की सूची में धर्म का नाम ही नहीं था। इसलिए वह आत्महत्या करने को बाध्य हो गया। धर्म जीवन से हताश व निराश व्यक्ति को जीवन जीने की प्रेरणा देता है। उन्हें जीवन जीने की कला सिखाता है। जो कमजोर व निर्बल हैं धर्म उनमें शक्ति का स्रोत बढ़ा देता है।

आज से सदियों वर्ष पूर्व महावीर व उनके उत्तरवर्ती आचार्यों ने आत्मा की प्रयोगशाला में बैठकर जिन तथ्यों की उद्घोषणा की थी वे आज भी विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं। अथवा यों कहा जाए कि वैज्ञानिक उन्हीं विलुप्त तथ्यों का अन्वेषण कर रहे हैं, जिन्हें कभी हमारे देश के ऋषि- मुनियों ने किया था। इसमें वैज्ञानिकों का कुछ भी अपना स्वयं का नहीं है। अल्बर्ट आइन्सटाइन की "थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी (सापेक्षकता का सिद्धान्त)" कुछ नया नहीं था। भगवान महावीर इसी बात को २५०० वर्ष पूर्व कह गए थे।

जहाँ पाश्चात्य देश में वैज्ञानिक पैदा होते हैं वहाँ भारत में तीर्थंकर, अवतार, ऋषि-मुनि जन्म लेते हैं। ऋषि- मुनि आत्मा के तह में जीने वाले होते हैं इसलिए वे विश्व समुदाय को अध्यात्म का प्रसाद बाँटते हैं। वैज्ञानिक शरीर के तल पर जीते हैं इसलिए वे भौतिक संसाधनों का आविष्कार करते हैं।

धर्म और विज्ञान की जोड़ी गाड़ी में जुते दो बैलों के समान है। जीवन के रथ को धर्म और विज्ञान के दो बैल ही खींचकर मंजिल तक ले जाते हैं। एक के बिना दूसरे की गति संभव ही नहीं है। दोनों के सम्मिलन से ही जीवन में समग्रता के दर्शन होते हैं। धर्म और विज्ञान दोनों की आवश्यकता पर बल देते हुए विश्व विख्यात वैज्ञानिक आइन्सटीन ने कहा था कि "धर्म के बिना विज्ञान अंधा है और विज्ञान के बिना धर्म पंगु (लंगड़ा) है" दोनों के परस्पर सहयोग से ही जीवन को संकट की घड़ी से उबारा जा सकता है।

विज्ञान की निरंकुशता पर धर्म का अंकुश और तथाकथित धर्म की मूढ़ताजन्य अपं गता को विज्ञान की वै शाखी प्राप्त हो ना जरुरी है क्यों कि हमें धर्म के नाम पर राजा की भांति शव (तथाकथित धार्मिक मूढ़ताएँ) कन्धे पर लेकर चलने की आदत पड़ गई है। विज्ञान हमें धर्म को परखने की कसौटी देती है हमारी तथाकथित मूढ़ताओं पर चोट करता है। प्रगति के अवरुद्ध द्वारों को उद्घाटित करता है और धर्म विज्ञान की शक्तियों पर अंकुश रखता है। विज्ञान निर्माण का सृजक तभी बनता है जब वह धर्म पिता की अंगुली थाम कर चलता है। आज जो विश्व में यत्र-तत्र हथियारों की घनघनाहट और बमों की धाँय-धाँय की आवाज सुनाई दे रही है उसका मुख्य कारण आध्यात्मिक मूल्यों का अभाव व भौतिक मूल्यों का प्रभाव है। आज १५ बार समूची पृथ्वी का विनाश कर सकें ऐसे करीब ६०,००० हाइड्रोजन बम विश्व की दो महाशक्तियों के पास तैयार हैं। धर्म के अभाव में ये शक्तियाँ समूची जीवन सृष्टि का अंत कर सकती है। महाविनाश की आशंका से भयाक्रांत विश्व को धर्म के अमोघ अस्त्र द्वारा ही भयमुक्त किया जा सकता है। अहिंसा व धर्म की प्रयोगशाला में बैठकर ही विश्व समुदाय भौतिक व धार्मिक जीवन जीने की कला सीख सकता है। धर्म के सुदृढ़ स्तम्भों पर खड़ा विज्ञान ही मानव कल्याण में समर्थ है। अहिंसा और निःशस्त्रीकरण द्वारा ही विश्व-मैत्री व विश्व-शांति की स्थापना संभव है।

कुछ लोग कहते हैं कि देखो विज्ञान ने कितनी प्रगति कर ली। उसने द्रुतगामी वाहनों का निर्माण कर सारी दुनिया को एक कमरे में समेट कर रख दिया। कृत्रिम मनुष्य बना दिया, कम्प्यूटर बनाकर मनुष्य का अस्तित्व बौना कर दिया और तो और चाँद पर भी पहुँच गया। पर इससे क्या होता है ? अनंत ऊंचाइयों को पार करते हुए चाँद पर पहुँच जाए लेकिन अपने पड़ोसी के साथ शांति से रहना न आये, इसे आप क्या कहेंगे ? यही न कि उसका दिमाग तो बड़ा हुआ है लेकिन दिल छोटा हो गया है। तन तो उजला हुआ है लेकिन मन तो काला हो गया है। धर्म काले मन की शुद्धिकरण के लिए पावन गंगाजल के समान है तो विज्ञान सत्य की शोध में उठा एक कदम है।दोनों के बीच पारस्परिक संतुलन से ही जीवन में प्रगति संभव है। मानव जीवन में दोनों के समन्वय को स्थान मिलना चाहिए।

□ स्वदेश, भोपाल ३ अक्टूबर ९३

मुनिश्री तुकोगंज आश्रम में

## भगवान आदिनाथ श्रमण संस्कृति के "माईल स्टोन" हैं

**मुनिश्री ने कहा कि ओछे लोगों के साथ ओछा नहीं, अच्छा व्यवहार करना चाहिए। ओछे लोगों के साथ ओछा बनना अपने आपको नीचे गिराना है।**

इन्दौर। आध्यात्मिक संतश्री तरुणसागरजी ने कहा कि भगवान आदिनाथ श्रमण संस्कृति के माइल स्टोन है। श्रमण संस्कृति तप, त्याग व साधना प्रधान संस्कृति है। श्रमण संस्कृति की अक्षुण्णयता का कारण भगवान आदिनाथ द्वारा प्रतिपादित कालजयी मूल्य है। भगवान आदिनाथ की संस्कृति मानवता की संस्कृति है। इसके सिद्धान्त सार्वभौमिक व सार्वकालिक है। भगवान आदिनाथ आदि शिक्षक, आदि ब्रम्ह आदि तीर्थकर अवतार पुरुष थे, आज भी उनका आदर्शमय जीवन हमारे लिए अनुकरणीय है।

मुनिश्री १०८ तरुणसागरजी ने आगे कहा कि संस्कृति मनुष्य के जीवन का शाश्वत सत्य है, यही मनुष्य और पशु के बीच की विभाजक रेखा है। आज महाविनाश की आशंका से भयाक्रांत विश्व को अहिंसा व विश्वमैत्री का सिद्धांत ही बचा सकता है। सद्‌भाव, समन्वय और संस्कार जीवन के परमावश्यक तत्व है। जहाँ सद्‌भाव से प्रेम बढ़ता है, समन्वय से शक्ति मिलती है वहीं संस्कारों से जीवन भी संवरता है। आज जब हथियारों की घनघनाहट और विस्फोटक बमों की धाँय-धाँय के बीच में मानवता सहमती हुई है, तब इस तरह की पद यात्राओं की आवश्यकता और बढ़ जाती है। मुनिश्री ने कहा कि सद्‌भाव, समन्वय संस्कार पद यात्रा किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति विशेष की नहीं अपितु उन तमाम लोगों की है जो भाईचारे और सहअस्तित्व के एवं जीवन मूल्यों के सिद्धांत पर विश्वास रखते हैं। अमन-चैन से रहना चाहते हैं।

मुनिश्री ने कहा कि ओछे लोगों के साथ ओछा नहीं, अच्छा व्यवहार करना चाहिए। ओछे लोगों के साथ ओछा बनना अपने आपको नीचे गिराना है। आदिनाथ भगवान हमें यही शिक्षा देते हैं कि हमें सभी को साथ लेकर चलना है किसी का तिरस्कार व उपेक्षा नहीं करनी है। क्योंकि दूसरों की उपेक्षा वस्तुतः अपनी उपेक्षा है, अपने आपकी अपेक्षा है।

मुनिश्री ने कहा कि अपने द्वारा अप्रभावना न होना ही सबसे बड़ी प्रभावना है। प्रभावना में नहीं सद्‌भावना में जीना है। अच्छाइयाँ किसी व्यक्ति विशेष की बपौति नहीं होती उसे जीने का सबको समान अधिकार होता है। महापुरुष सबके होते हैं उन पर धर्म विशेष का ठप्पा लगाना अनुचित है।

□ अज्ञात १७ मार्च ९३

# आनंद बटोरने में नहीं, बाँटने में है

**आज एक बाप अपने चार पुत्रों की परवरिश तो कर लेता है लेकिन चार पुत्र मिलकर भी अपने एक बूढ़े बाप की परवरिश नहीं कर सकते । आज अगर आप अपने नन्हे बालक की अंगुलि पकड़कर मंदिर ले जाते हो तो वह कल (बुढ़ापे में) आपका हाथ पकड़ कर शिखरजी की वन्दना करायेगा।**

इन्दौर । प्रखर प्रवक्ता मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि जीवन का आनंद बटोरने में नहीं, बाँटने में है । परिग्रह का प्रायश्चित दान है । दान से त्याग बड़ा है, त्याग जीवन को उन्नत बनाता है, पाने के वे ही अधिकारी हैं, जो त्याग करने का साहस रखते हैं ।

प्रखर चिंतक मुनिश्री तरुणसागरजी ने आगे कहा कि माँ की गोद दुनिया की सबसे पड़ी पाठशाला है । बालक के जीवन निर्माण में माँ–बाप की अहम् भूमिका होती है । पिता का पुत्र के प्रति कर्तव्य है कि वह अपने पुत्र को इतना योग्य बना दे कि वह विद्वानों की सभा में प्रथम पंक्ति में बैठने की पात्रता प्राप्त करे और पुत्र का पिता के प्रति कर्तव्य है कि वह ऐसे कर्म करे, ऐसा जीवन जिए कि उसे देखकर हर कोई उसके माँ–बाप से पूछे कि तुमने किस पुण्य से ऐसा पुत्र पाया है ।

मुनिश्री ने अपनी विनोदमय प्रवचन शैली में पुरजोर शब्दों में कहा कि अफसोस है कि आज एक बाप अपने चार पुत्रों की परवरिश तो कर लेता है लेकिन चार पुत्र मिलकर भी अपने एक बूढ़े बाप की परवरिश नहीं कर सकते। संस्कारों के अभाव में बाप को बाप नहीं पाप समझते हैं आज की नई पीढ़ी । सत्संस्कार जीवन का आधार हैं, संस्कार संस्कृति और सभ्यता के संरक्षक है । अपने बुढ़ापे को सुखमय बनाने हेतु अपने संतान को संस्कारित व धार्मिक बनायें, क्योंकि आज अगर आप अपने नन्हे बालक की अंगुलि पकड़कर मंदिर ले जाते हो तो वह कल (बुढ़ापे में) आपका हाथ पकड़ कर शिखरजी की वन्दना करायेगा। क्योंकि जगत एक प्रति ध्वनि है, जो हम जगत को देते हैं जगत वही हमें लौटा देता है, जितना देते हैं उतना लौटा देता है ।

मुनिश्री ने कहा कि आज हमारे पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है । हम दरिद हो गये, भिखारी हो गये, क्योंकि हमारे जीवन मूल्य खो गये हैं, हमें अपने जीवन मूल्यों की पुर्नस्थापना करना है ।

□ नईदुनिया १८ मार्च ९३

## नारी समाज की नाड़ी है

**जिसके पास धन नहीं, मकान-दुकान नहीं वह दरिद्र नहीं, बल्कि दरिद्र वह है जो साठ घड़ी में से दो घड़ी का समय अपने "आत्म चिन्तन" के लिए नहीं निकाल सकता है।**

इन्दौर। मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि समाज का आधार परिवार है और परिवार का आधार नारी है, नारी महान है वह महापुरुषों की जननी है। नारी की प्रगति के बिना परिवार की प्रगति नहीं। परिवार का आधार नारी है। शरीर में जो स्थान नाड़ी का है समाज में वही स्थान नारी का है। नारी समाज की नाड़ी है। उसके बिना समाज का अस्तित्व नहीं। वह शक्ति की प्रतीक सेवा की ज्योति और संपत्ति का वरदान है।

प्रखर चिंतक श्री तरुणसागरजी महाराज ने कहा कि चरण आचरण के प्रतीक है। चरण यथार्थ के धरातल पर चलते हैं इसलिए चरण पूज्य है। चरण यथार्थ के प्रतीक है क्योंकि वे धरा से जुड़कर चलते हैं जबकि मस्तिष्क कल्पना लोक में विचरता है। यही कारण है कि हम श्रृद्धेय के मस्तिष्क को छूकर नहीं, चरणों को छुकर वंदना करते हैं। हम जैसे ही चरण स्पर्श करते हैं हमें ऊर्जा प्राप्त होती है, जिससे हमारी विवेक बुद्धि और ज्ञान इन्दियां उद्वेलित होकर सक्रिय हो जाती है।

मुनिश्री ने कहा कि हम प्रतिक्षण ईर्ष्या में जी रहे हैं। ईर्ष्या एक ऐसी दीमक है जो मानवीय जीवन को अन्दर से खोखला बना देती है। ईर्ष्या की भावना त्यागे बगैर ईश्वर से नहीं मिल सकते, आज हमारे जीवन मूल्य लकवाग्रस्त हो चुके हैं। जिसके पास धन नहीं, मकान-दुकान नहीं वह दरिद्र नहीं, बल्कि दरिद वह है जो साठ घड़ी में से दो घड़ी का समय अपने "आत्म चिन्तन" के लिए नहीं निकाल सकता है। आत्म चिन्तन का समय ही अपना समय है।

जैन मुनि ने बताया कि जो हमारे पास होता है उसका हमारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं होता। हमारी दृष्टि सदा अभाव पर रहती है। अगर हमारे जेब में ९० रुपये हैं तो मन में एक ही बात खटकती है कि १० रुपये कम हैं। हम नब्बे रुपये का सुख नहीं भोगते हैं। हाँ १० रुपये का दुःख अवश्य भोगते हैं। हम जो हमारे पास है उसका उपभोग नहीं करते, लेकिन जो पड़ोसी के पास है और हमारे पास नहीं है उसके लिए दुःखी रहते हैं।

□ चेतना १९ मार्च ९३

## संस्कार की मुहर जीवन के सिक्के को बहुमूल्य बना देती है

**आज हम दोहरा जीवन जी रहे हैं, हमारा मंदिर का जीवन कुछ है और मंडी का जीवन कुछ है, लेकिन याद रखो जब तक मंदिर का और मंडी का जीवन एक नहीं होगा तब तक जीवन में क्रांति नहीं आ सकती ।**

इन्दौर। जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि संस्कार की मुहर जीवन के सिक्के को बहुमूल्य बना देती है। मुहर रहित सिक्का चलन के बाहर हो जाता है तथा संस्कारहीन बालक समाज में आतंकवादी का उग्ररूप धारण कर लेता है। बच्चे पान के कोमल पत्ते के समान होते हैं, पान सूखने के बाद मुड़ता नहीं है उसी तरह बालकों पर अल्पवय में ही अच्छे संस्कार डाले जा सकते हैं।

युवा तपस्वी मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि आज हम दोहरा जीवन जी रहे हैं, हमारा मंदिर का जीवन कुछ है और मंडी का जीवन कुछ है, हम जो मंदिर में होते हैं वह बाजार में नहीं होते और जो बाजार में होते हैं वह घर में नहीं होते, बहरुपिया बन चुके हैं हम लोग, लेकिन याद रखो जब तक मंदिर का और मंडी का जीवन एक नहीं होगा तब तक जीवन में क्रांति नहीं आ सकती। जीवन में क्रांति उस क्षण आती है जब आचरण और उच्चारण एक हो जाता है। मन और मुख के बीच की खाई पट जाती है।

मुनिश्री ने कहा, संपूर्ण सत्य के अनुभव होने के बाद उच्चारण और आचरण की दूरी सिमट जाती है। जब तक अपना अनुभव पैदा नहीं होता तब तक बोध नहीं हो सकता है। आत्म बोध के अभाव में मनुष्य का मन लक्ष्य से च्युत हो जाता है। उन्होंने कहा कि दुःख का मूल कारण मनुष्य की कभी तृप्त न होने वाली तृष्णा है तथा दुःख एवं तृष्णा का अन्त मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति से ही है।

देश में उत्पन्न विषम स्थितियों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि युद्ध की विनाशकारी विभीषिका के विरुद्ध अहिंसा की ध्वजा फहराना जरूरी है। ज्वालामुखी के कगार पर खड़े विश्व को अहिंसा ही बचाने में समर्थ है। अहिंसा का सिद्धांत निहत्थे आदमी की आत्मिक शांति का सिद्धांत है। देश में व्याप्त आराजकता और हिंसा का निराकरण अहिंसा द्वारा ही संभव है। उन्होंने मानव समाज को आव्हान किया और कहा कि समय आ गया है कि हम तमाम मतभेदों से ऊपर उठकर समता, स्वतंत्रता, भाईचारे और विश्व बन्धुत्वन नव विश्व का निर्माण करें।

□ **स्वदेश २० मार्च ९३**

# गुरु दीवार नहीं, द्वार है

**गुरु शास्त्र और सिद्धांत नहीं देता वह तुम्हे ज्ञान देता है । तुम्हें आँख देता है जिससे तुम देख सको कि कहाँ खाई-गड्ढे हैं । और कहाँ समतल राज्य मार्ग है ।**

इन्दौर । जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि गुरु दीवार नहीं, द्वार है । गुरु के द्वार से गुजर कर ही परमात्मा को पाया जा सकता है । यही कारण है कि सिक खों ने अपने आराधना स्थल को गुरुद्वारा कहा । गुरु भगवान नहीं दे सकता, हां भय अवश्य काट सकता है । और भय का कटना ही भगवान का साक्षात्कार है । गुरु शास्त्र और सिद्धांत नहीं देता वह तुम्हे ज्ञान देता है । तुम्हें आँख देता है जिससे तुम देख सको कि कहाँ खाई-गड्ढे हैं । और कहाँ समतल राज्य मार्ग है ।

मुनिश्री ने कहा कि परतंत्रता में जन्म लेना दुर्भाग्य नहीं परतंत्रता में जीना और उसी में मर जाना दुर्भाग्य है, माना कि हम दुर्भागी हैं क्योंकि हम परतंत्र पैदा हुए हैं लेकिन हम सौभाग्यशाली बन सकते हैं बशर्ते हमें अपनी परतंत्रता का ख्याल हो आए । अभी हमने परतंत्रता को ही स्वतंत्रता मान लिया है यह और खतरनाक बात है । बंधन का अनुभव ही मोक्ष की आकांक्षा पैदा करता है।

मुनिश्री ने पूरी बुलंदगी के साथ कहा कि आदमी एक सम्राट की तरह पैदा होता है लेकिन भिखारी की तरह मरता है जबकि मनुष्य की नियति यह कि वह सम्राट की तरह पैदा हो, सम्राट की तरह जिये और सम्राट की तरह ही मरे । याद रखें कि जो मन का मालिक बनता है वही शख्स सम्राट की तरह जीता और मरता है । बाकी वे लोग जो मन के गुलाम है कुत्ते से भी बदतर मौत मरते हैं । हम मावन मन के गुलाम नहीं सम्राट बनें ।

संत श्रेष्ठ तरुणसागरजी ने कहा कि जो पाप को पाप मानकर करता है वह तो एक दिन सुधर जाता है लेकिन जो पाप को पाप मानने के लिए तैयार ही नहीं है, उसके सुधरने-सम्हलने के कोई "चांस" नहीं है । सोते हुए को जगाना आसान है लेकिन जो सो ही नहीं रहा है सिर्फ सोने का बहाना लेकर लेटा है उसे जगाना मुश्किल है । मुनिश्री ने कहा कि महावीर का धर्म हृदय का धर्म है, महावीर ने अपने धर्म प्रचार के लिए बल प्रयोग कभी नहीं किया उन्होंने सदैव हृदय परिवर्तन की बात कही।

□ **दैनिक भास्कर**
२१ मार्च ९३

## जीवन संघर्ष नहीं, आदर्श हैं

**अभी जिसे आप जीवन कहते हैं वह एक मूर्च्छा है, एक निंद्रा है, एक दुःख की लंबी कथा है, एक अर्थहीन खालीपन है चूंकि जीवन का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं, इसलिए एक बोझ है, भार है, एक घुटन है ।**

इन्दौर । मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि मनुष्य ने जीवन में विश्व को जानने का प्रयास तो किया, और कुछ अंशों तक विश्व को जान भी लिया किन्तु स्वयं से अनजान बना रहा । धर्म स्वयं को जानने-पहचानने की कला है । स्वयं को परखने की कसौटी है । अस्तित्व बोध का नाम ही धर्म है । धर्म जीने की कला का प्रशिक्षण देता है । जीने की कला हो तो जीवन आदर्श है, वरना संघर्ष बनकर रह जाता है ।

२५ वर्षीय बाल ब्रह्मचारी जैन संत ने आगे कहा कि मनुष्य एक बन्द बीज है, जिसमें वृक्ष बनने की अनंत संभावनाएं हैं । बीज का वृक्ष होना नियति है और इंसान का भगवान बनना सहज- स्वभाव है । जीवन उन्हीं का सार्थक है जिनके जीवन में सौन्दर्य के फूल खिलते हैं और सत्य की सुगन्ध फैलती है । जीवन में मोक्ष का फूल भी खिल सकता है और सत्य की सुगंध भी फैल सकती है बशर्ते जीवन धर्म से ओतप्रोत हो ।

उन्होंने कहा कि आदमी का वास्तविक जन्म उस दिन होता है कि जिस दिन वह जान लेता है कि मेरा जीवन लक्ष्य क्या है। जिस दिन जीवन में धर्म का प्रवेश होता है, वही सही जन्मदिन है और वह जन्म देते हैं, सद्गुरु । माँ-बाप सिर्फ जन्म देते हैं लेकिन गुरु जीने की कला सिखाते हैं । अभी जिसे आप जीवन कहते हैं वह एक मूर्च्छा है, एक निंद्रा है, एक दुःख की लंबी कथा है, एक अर्थहीन खालीपन है चूंकि जीवन का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं, इसलिए एक बोझ है, भार है, एक घुटन है ।

मुनिश्री ने कहा कि जो दे दिया जाता है वह सोने का हो जाता है और जो रख लिया जाता है वह मिट्टी का हो जाता है । परिगृह का प्रायश्चित दान है, संग्रह के साथ त्याग जरुरी है । महावीर स्वामी ने अर्जन के साथ विसर्जन का भी सूत्र दिया। वह इसी सिद्धांत का परिचायक है जो देता है, वह देवता है और जो रखता है वह राक्षस है, आप क्या हैं स्वयं निर्णय करें ?

□ **नईदुनिया** २२ मार्च ९३

मुनिश्री परदेशीपुरा में

# अन्तःकरण सबसे बड़ी अदालत है

**अगर आदमी पतित होता है तो इतना पतित हो जाता है कि पशुओं को भी मात कर देता है । और यदि उठता है तो देवों को भी मात कर देता है । हमें पतित नहीं, पावन बनना है ।**

इन्दौर । मनुष्य एक सोपान है, एक सीढ़ी है जिस सीढ़ी से ऊपर चढ़ा जा सकता है उसी सीढ़ी से नीचे भी उतरा जा सकता है, एक ही सीढ़ी चढ़ने और उतरने दोनों के काम आती है । मनुष्य देह भी सीढ़ी के समान है । जिस मनुष्य शरीर के सदुपयोग से सिद्धाचल के द्वार पर दस्तक दे सकते हैं उसी देह का दुरुपयोग करके रसातल में भी पहुंचा जा सकता है । यह निर्णय हमको ही करना है कि हमें रसातल में जाना है या सिद्धाचल में । हम स्वतंत्र हैं, परिपूर्ण स्वतंत्र हैं । ठीक उतने ही स्वतंत्र हैं जितनी की मौत अपने आप में स्वतंत्र है ।

कविहृदय संतश्री तरुणसागरजी ने आगे कहा कि अगर आदमी पतित होता है तो बुरी तरह पतित होता है, इतना पतित हो जाता है कि पशुओं को भी मात कर देता है । नरक को भी छू लेता है और यदि उठता है तो देवों को भी मात कर देता है । चांद-तारों से भी ऊपर उठ जाता है उसके उत्कर्ष को देखकर देवों को भी ईर्ष्या होने लगती है । हमें पतित नहीं, पावन बनना है । सौपानों पर चढ़ अनंत ऊंचाईयों का स्पर्श करना है ।

मुनिश्री ने कहा कि अपना अन्तःकरण सबसे बड़ी अदालत है । अन्तःकरण के दर्पण में कुछ भी छिपाना संभव नहीं है । अन्तः करण परम निकट हैं । निकट ही नहीं, विकट भी है क्योंकि उसमें सब कुछ झलक जाता है । अगर मन को साक्षी मानकर हर काम करें तो व्यक्ति पाप कर्म में लिप्त न हो ।

मुनिश्री ने कहा कि चाहे हम किसी भी सम्प्रदाय या धर्म के अनुयायी क्यों न हो, सभी के विचारों को सुनना चाहिए । आज प्रत्येक धर्म में कूड़ा, करकट इकट्ठा हो गया है जिससे धर्म का महत्व कम हो गया है । आवश्यकता इस बात की है कि हम सिर्फ गुणों पर दृष्टि रखें, गुणग्राही बनें । बुराई सबमें है, हममें भी है । अगर हम अपनी आँखों में अमृत बसालें तो सृष्टि के कोने-कोने में अमृत ही अमृत नजर आयेगा । दोष सृष्टि में नहीं, दृष्टि में है ।

□ दैनिक भास्कर
२३ मार्च ९३

मुनिश्री न्यू देवास में

## बातों के बादशाह नहीं, आचरण के आचार्य चाहिए

**मंत्रों की सार्थकता मन की शुद्धता पर निर्भर होती है । मन सिद्ध हो जाए तो मंत्र सिद्ध होने में समय नहीं लगता । मंत्र सिद्ध इसलिए नहीं होता है क्योंकि हमारा मन अशुद्ध है ।**

इन्दौर । प्रखर प्रवक्ता जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि आज देश को बातों के बादशाहों की नहीं, आचरण के आचार्यों की जरुरत है । बातों के बादशाह तो घर-घर, गली-गली, मुहल्ले- मुहल्ले मिल जायेंगे, लेकिन आचरण के आचार्य ढूंढे नहीं मिलते । जीवन में परिवर्तन उच्चारण से नहीं, आचरण के दर्शन से आता है। आचरण सर्वोपरि है । केवल वाणी के विलास से क्रांति नहीं आयेगी, जीवन का निचोड़ भी होना चाहिए ।

मुनिश्री ने आगे कहा कि मंत्रों की सार्थकता मन की शुद्धता पर निर्भर होती है । मन सिद्ध हो जाए तो मंत्र सिद्ध होने में समय नहीं लगता । मंत्र सिद्ध इसलिए नहीं होता है क्योंकि हमारा मन अशुद्ध है । अगर मन शुद्ध न हो तो मंत्र सिद्ध हो ही नहीं सकता । उन्होंने वाल्मिकि और अंजन चोर के उदाहरण को रुपायित करते हुए कहा कि वाल्मिकि राम की जगह "मरा-मरा" का और अंजन चोर णमो अरिहंताणं की जगह "आणं-ताणं " का जाप करते-करते सिद्धि को पा गये, इसमें राज क्या है ? राज यही है कि उनका मन्त्र तो अशुद्ध था लेकिन मन अशुद्ध नहीं था । मन शुद्धि ही मंत्र सिद्धि का प्रथम कारण है ।

मुनिराज श्री तरुणसागरजी ने पुरजोर शब्दों में कहा कि बैर का विकास करने वाला वैष्णव नहीं, बैर का विनाश करने वाला वैष्णव है । उन्होंने रामायण के "सेतु बन्धन" प्रसंग का जिक्र करते हुए कहा कि अगर मन में श्रृद्धा हो तो जल में पाषाण भी तैरने लगे तो कोई आश्चर्य नहीं है, और वस्तुतः जल में शिलाएं नहीं वरन नल-नील की श्रृद्धा और विश्वास तैर रहा था । परमात्मा विराट है, उसे इन छोटे-छोटे चर्म चक्षुओं से देख पाना संभव नहीं है । परमात्मा को श्रृद्धा के कानों से ही सुना जा सकता है । खण्ड-खण्ड भागों में विभक्त श्रृद्धा भी परमात्म दर्शन में समर्थ नहीं है, श्रृद्धा अखण्ड होनी चाहिए ।

□ **दैनिक भास्कर**
२४ मार्च ९३

मुनिश्री जबेरीबाग नसिया में

## संतों का आचरण दर्पण के समान होता है

**महावीर को मानने वाला श्रावक नहीं, महावीर को सुनने वाला श्रावक है। श्रावक का अर्थ है जो श्रवण में समर्थ है, जो सुनने की कला में निपुण है वह श्रावक है, अभी हमें सुनना ही नहीं आता।**

इन्दौर। सुप्रसिद्ध जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि सत्संग का अर्थ सम्यग्दर्शन के निकट पहुँचना और सत्य की दिशा में बढ़ना है। जो सुख सत्संग में है वह सुख तो बैकुण्ठ में भी नहीं है, कारण कि संत वह दर्पण है जिसमें मनुष्य अपनी कमजोरियों और भूलों को देखकर सुधार कर सकता है। संतों का आचरण दर्पण के समान होता है। संतों के पास जाओ तो तर्क और बुद्धि को बाहर ही छोड़ देना, क्योंकि तर्क और बुद्धि को लेकर जाओगे तो संत-द्वार से कुछ भी हासिल नहीं कर पाओगे, और यदि श्रृद्धा व समर्पण की भावना को लेकर जाओगे तो जीवन का कायाकल्प हो जायेगा।

मुनिश्री ने आगे कहा कि महावीर को मानने वाला श्रावक नहीं, महावीर को सुनने वाला श्रावक है। श्रावक का अर्थ है जो श्रवण में समर्थ है, जो सुनने की कला में निपुण है वह श्रावक है, अभी हमें सुनना ही नहीं आता। यही एकमात्र कारण है कि वर्षों से मुनि-आचार्यों को सुनने के बाद भी जीवन में कोई परिवर्तन, कोई क्रांति नहीं हो पाती, उन्होंने कहा कि अभी हम संतों को नहीं, अपने आपको सुनते हैं, हम वही सुनते हैं जिससे हमारी धारणा मजबूत होती है, जो हमें बदलता है, उसे हम सुनते ही नहीं हैं।

मुनिश्री ने कहा कि महावीर स्वामी ने आँख की वनस्पत कान पर ज्यादा जोर दिया। समाधि में श्रवण-शक्ति की जरुरत होती है, दृष्टि की नहीं। समाधिरत साधक के नेत्र ज्योति मंद पड़ जाए तो कोई बात नहीं, लेकिन श्रवण शक्ति मंद नहीं पड़नी चाहिए। आँख एकांगी है और कान बहुआयामी। जब हम देखते हैं तो केवल एक बार में एक ही दिशा में देख सकते हैं, लेकिन कान के साथ ऐसी कोई बात नहीं है, कान बहुआयामी हैं कान चारों तरफ की सुन लेता है। आँख टार्च की तरह है, और कान दीये की तरह। टार्च एक ही दिशा को प्रकाशित करती है लेकिन दीया जब जलता है तो दसों दिशाएँ आलोक से भर जाती है। हम श्रावक बनें, दर्शक नहीं। अगर हम सुनने की कला सीख जाएं तो जीवन में क्रांति आ जाए।

□ नईदुनिया, २५ मार्च ९३

# धर्म परम्परा नहीं, विद्रोह है

**भीड़ के पास केवल आग्रह होता है सत्य नहीं। सत्य का भीड़ से कोई संबंध नहीं। जहाँ भीड़ है वहाँ अक्सर असत्य होता है। मौन प्रार्थना ईश्वर को जल्दी स्वीकार होती है, क्योंकि शब्द प्रार्थना को बोझिल बना देते हैं, यही बोझिलता ईश्वर तक पहुँचने में विलम्ब का कारण बन जाती है।**

इन्दौर। प्रखर प्रवक्ता मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि धर्म परम्परा नहीं विद्रोह है। धर्म दरिद्रता नहीं, जीवन की परम समृद्धि है। गलत परम्पराओं से मुक्ति ही धर्म का प्रादुर्भाव है। धर्म ढंग का जीवन जीने की कला सिखाता है, अभी हम ढंग का नहीं, ढोंग का जीवन जी रहे हैं, इसलिए हमारे जीवन में कोई आनंद नहीं, रस नहीं कोई बहार नहीं, सिर्फ एक घुटन व ऊब है।

मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि भूखे पेट को तो भरा जा सकता है, लेकिन भूखी निगाहों को नहीं भरा जा सकता है। भूखी निगाहों को भरने जब-जब हम जाते है तो दूसरों पर भूखे भेडिये की तरह टूट पड़ते हैं तो भी हमारा मन तृप्त नहीं हो पाता, क्योंकि इच्छाएं अनंत हैं, आकांक्षों को छूना आकाश को छूने से भी दुस्कर है। जब तक हम वासनाओं व कामनाओं के जाल से मुक्त न होंगे, तब तक अतृप्त ही बने रहेंगे। लाभ से लोभ का जन्म होता है और लोभ अनर्थों का घर तथा विनाश का मूल कारण है।

मुनिश्री ने आगे कहा कि हम भीड़ में जीने के आदि हो गए हैं, इसलिए अपने आपसे टूट गए हैं। भीड़ के पास केवल आग्रह होता है सत्य नहीं। सत्य का भीड़ से कोई संबंध नहीं। जहाँ भीड़ है वहाँ अक्सर असत्य होता है। प्रखर चिंतक मुनिश्री ने कहा कि सत्य और प्रेम कहा नहीं जा सकता सिर्फ जिया जा सकता है। जीना ही सिर्फ बताने का एकमात्र ढंग है। सत्य को जानना कठिन नहीं है, सत्य को बताना कठिन है। सत्य की अभिव्यक्ति शब्दों में संभव नहीं है। सत्य विराट और अनंत है।

श्री संत ने बताया कि मौन प्रार्थना ईश्वर को जल्दी स्वीकार होती है, क्योंकि शब्द प्रार्थना को बोझिल बना देते हैं, यही बोझिलता ईश्वर तक पहुँचने में विलम्ब का कारण बन जाती है, कितनी पूजा की यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह है कि किन भावों से पूजा की। क्या खाया ? कितना खाया ? यह महत्वपूर्ण नहीं है, कितना पचाया, यह महत्वपूर्ण है।

□ **चौथासंसार** २६ मार्च ९३

# जीवन का सत्य वासना नहीं साधना है

**संसार में रहना बुरा नहीं, अपितु मन में संसार को बसाना बुरा है। पानी में तैरने वाला सागर से पार हो जाता है परन्तु उसमें डूबने वाला वहीं मर जाता है। संसार में तैरना है डूबना नहीं।**

इन्दौर। मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा, जीवन का सत्य वासना नहीं साधना है। वासना अच्छे भले मनुष्य को शैतान बना देती है और साधना पतित से पतित इंसान को भगवान बना देती है। वासना का अर्थ है आत्मा से दूर भागना और साधना का अर्थ सत्य के निकट पहुँचना। मनुष्य यदि अपनी कामनाओं और वासनाओं पर काबू पा ले तो उसे नश्वर संसार में भी आनंद का महासागर दिखाई देने लगे। मुक्ति का एकमात्र द्वार वीतराग धर्म है। मनोविकारों के चंगुल से छूटकर ही व्यक्ति वीतरागता को उपलब्ध हो सकता है। शरीर के तल पर जीने वाले लोग आत्मा का अनुभव नहीं कर सकते।

मुनि प्रवर श्री तरुणसागरजी महाराज ने आगे कहा कि पुण्य और पाप एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संपत्ति और विपत्ति पुण्य और पाप का विपाक हैं। अतः मनुष्य को पुण्योदय से प्राप्त वैभव-ऐश्वर्य के बलबूते इतराना नहीं चाहिए और न ही पापोदय से कठिन परिस्थितियों में घबराना चाहिए। उन्होंने कहा, पाप किसी का सगा नहीं होता और पुण्य किसी को दगा नहीं देता। मुनिश्री ने पाप-पुण्य विषयक "चपलमन" की कविताएं भी सुनाई।

विनोदप्रिय संतश्री ने बताया कि वस्तु विकारी नहीं अपितु उसके प्रति आसक्तिपूर्ण विचार ही विकार को जन्म देते हैं। संसार में रहना बुरा नहीं, अपितु मन में संसार को बसाना बुरा है। पानी में तैरने वाला सागर से पार हो जाता है परन्तु उसमें डूबने वाला वहीं मर जाता है। संसार में तैरना है डूबना नहीं। आपने बताया कि जीवन प्रथम और मृत्यु अंतिम सत्य है। मृत्यु का भय जीवन के लिए मोह को जन्म देता है और जीवन का मोह आराम सुविधा की लिप्सा को जन्म देता है और फिर मनुष्य इस तरह जीने लगता है कि वह बस एक मनुष्य है – समाज से उसका कोई संबंध नहीं लेकिन वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य वह इकाई है जिससे समाज का निर्माण होता है।

□ **दैनिक भास्कर**
२७ मार्च ९३

मुनिश्री जैन कॉलोनी (नेमीनगर) में

# संन्यास महामृत्यु है

**नींद छोटी मृत्यु है और मृत्यु बड़ी नींद है । हम रात जो सोते हैं, वह मृत्यु का पूर्वाभ्यास है ।**

इन्दौर। प्रखर प्रवक्ता जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि संन्यास महामृत्यु है । महामृत्यु सेही महाजीवन का प्रादुर्भाव होता है। अंहकार की मृत्यु ही आत्मा का जीवन है। अंहकार की परत टूट जाए तो महाजीवन का बीज अंकुरित हो जाए।

जैन चिंतक श्री तरुणसागरजी ने कहा कि प्रमाद ही मृत्यु है और अप्रमाद ही जीवन है, अप्रमाद वह अमृत-पथ है जिस पर से गुजर कर ही व्यक्ति दिव्यता और अमरत्व का अनुभव करता है । अप्रमादी कभी नहीं मरता और प्रमादी तो सदा मृत ही है । उन्होंने आगे कहा कि नींद छोटी मृत्यु है और मृत्यु बड़ी नींद है। हम रात जो सोते हैं, वह मृत्यु का पूर्वाभ्यास है । निदामग्न व्यक्ति बैर-विरोध को भूल जाता है। झगड़े, कलह, संघर्ष तभी तक होते हैं जब तक व्यक्ति की आँखें खुली रहती है। आँख मिचते ही सब विश्राम पा लेते हैं। आँख मिचने का मतलब मूर्च्छा का टूटना या आंतरिक जागरण होना है । जीवन की क्रांति "जागरण" है। जागना ही एकमात्र प्रार्थना है, उपासना है। जो जागते हैं वे प्रभु के मंदिर को उपलब्ध हो जाते हैं जो सोए रहते हैं वे खो देते हैं ।

प्रखर चिंतक मुनिश्री तरुण सागरजी ने कहा कि साधु को सोने नहीं देना चाहिए और पापी को जागने नहीं देना चाहिए, कारण कि अगर साधु-धर्मात्मा सो जाए तो जगत का कल्याण रुक जायेगा और यदि पापी, दुर्जन जाग जाए तो संसार में विप्लव मच जायेगा । लोगों का अमन-चैन खो जाएगा ।

श्रोताओं से खचाखच भरे कम्युनिटी हाल में आयोजकों द्वारा यह आव्हान किए जाने पर कि थोड़ा-थोड़ा आगे आ जाएं (ताकि आने वाले लोग बैठ सकें) पर मुनिश्री ने कहा कि आगे नहीं बढ़ना अपितु पीछे मुड़ना है। पीछे मुड़ने का अर्थ है प्रतिक्रमण। जबकि आगे बढ़ने का अर्थ है अतिक्रमण (आक्रमण) प्रतिक्रमण पुण्य है अतिक्रमण पाप है । पदार्थ से परमार्थ की ओर आना ही प्रतिक्रमण है, और परमार्थ से पदार्थ की ओर जाना ही आक्रमण है ।

मुनिश्री ने कहा कि समयसार गरिष्ठ भोजन है, सिंहों का भोजन है, लेकिन अफसोस है कि आज सिंहों का भोजन गधे चर रहे हैं। अगर समय-सार की आत्मा को समझना है तो कुन्दकुन्द के आचरण को अमल में लाना होगा ।

□ नईदुनिया २८ मार्च ९३

# संतों से जीवन्त प्रश्न पूछो

**सत्य उदात्त मधुर व विराट होता है । इस संसार में सत्य से बढ़कर दूसरा कोई मुक्तिदाता नहीं है । सत्य ही जीवन है, जीवन ही सत्य है । सत्य ही शिव है, शिव ही सुन्दर है ।**

इन्दौर । जैन मुनि श्री तरुणसागरजी ने एक जनमेदिनी धर्मसभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि हमारे दुःखों का मूल कारण हमारी गलत मान्यताएं हैं । हमने मान रखा है कि हम इस परिवार का, समाज का भरण-पोषण कर रहे हैं, अगर हम न होंगे तो इस परिवार का क्या होगा ? हमारा यह ख्याल ही हमें जगत के कर्तापन के भार से मुक्त नहीं होने देता है, महावीर ने कहा हम सिर्फ अपने उत्तरदाता हो सकते हैं, किसी अन्य के नहीं । क्योंकि कर्ता ही भोक्ता है ।

मुनिश्री ने कहा कि धर्म एक प्रक्रिया है, एक उपचार है, एक चिकित्सा है, एक जीवित विज्ञान है । एक आत्मगत अनुभव है । भगवान बुद्ध के चार आर्यसत्यों की चर्चा करते हुए मुनिश्री ने कहा कि संतों का आशीर्वाद और उपदेश उनके लिए है जो दुःखी है और दुःख से मुक्त होना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि मुनियों के पास जाकर ऐसे प्रश्न पूछने चाहिए जिससे जीवन में क्रांति का सूत्रपात्र हो। संतों से जीवन्त प्रश्न पूछो । जीवन्त प्रश्न ही जीवन में परिवर्तन ला सकते हैं । अभी हम मृत प्रश्न पूछते हैं जिनका कोई औचित्य नहीं है, कुतुहलवश प्रश्न पूछते हैं, जिज्ञासावश नहीं । जिज्ञासा से पूछे गये प्रश्नों के उत्तर ही जीवन को सार्थकता दे सकते हैं ।

उन्होंने कहा कि भौतिक ऐश्वर्य में जीने वाले व विषय लोलुपी व्यक्ति सत्य के दर्शन कभी नहीं कर सकता, सत्य उदात्त मधुर व विराट होता है । इस संसार में सत्य से बढ़कर दूसरा कोई मुक्तिदाता नहीं है । सत्य ही जीवन है, जीवन ही सत्य है । सत्य ही शिव है, शिव ही सुन्दर है।

मुनिश्री ने कहा कि आदर्श हमारे विचारों तक ही न रहे, आचरण में भी प्रतिबिम्बित होना चाहिए, जब तक हम आदर्शों के अनुरूप जीवन नहीं जीते जब तक जीवन के आदर्शों का औचित्य उस चित्रित पुष्प-सा है जिसमें सौन्दर्य तो होता है लेकिन सुगन्ध नहीं होती ।

□ दैनिक भास्कर
२९ मार्च ९३

# सम्यग्दृष्टि कौन ? मिथ्यादृष्टि कौन ?

**रसगुल्ले का नाम सुनकर जिसके मुख में पानी आ जाए वह मिथ्यादृष्टि और जिसकी आँखों में पानी आ जाए वह सम्यग्दृष्टि है ।**

इन्दौर। मुनि श्रेष्ठ श्री तरुणसागरजी महाराज ने कहा कि संयम के अभाव में इन्दियां बगावत कर देती है, जिससे जीवन दुःख का पर्याय बन जाता है। इसलिए कहा है कि संयम ही जीवन है। संयम वह मशाल है जो जीवन के कोने-कोने को आलोकमय कर देती है। संयम वह पतवार है जो जिन्दगी की नाव को भवसागर के पार पहुँचा देती है, संयम वह तपस्या है जिससे गुजर कर व्यक्ति काँच से कंचन बन जाता है। संयम वह कवच है जो विषयों के बाणों को भीतर घुसने से रोकती है। संयम भारतीय संस्कृति की आत्मा है। जीवन का विकास संयम के सद्भाव में है न कि अभाव में।

प्रखर प्रवक्ता मुनिश्री तरुणसागरजी ने आगे कहा कि अनुशासन व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र को महान बनाता है। अनुशासन आत्मप्रेरणा से होना चाहिए क्योंकि आरोपित अनुशासन ज्यादा देर नहीं टिकता। जिस प्रकार बम गिराकर शान्ति स्थापित नहीं की जा सकती। उसी प्रकार कानून व दंड के बल पर अनुशासन की स्थापना नहीं की जा सकती है, आत्मानुशासन वाला व्यक्ति ही परिवार समाज व राष्ट्र में अनुशासन का पाठ पढ़ा सकता है।

मुनिश्री ने पुरजोर शब्दों में कहा कि हिंसा की रेखा को मिटाना नहीं है क्योंकि उसे मिटाना संभव भी नहीं है, हिंसा की रेखा के सामने अंहिसा की बड़ी रेखा करना, हिंसा की रेखा आपो-आप छोटी हो जायेगी। हम सकारात्मक चिंतन शैली को अपनाए ताकि जीवन शैली में कुछ परिवर्तन हो सके।

मुनिश्री ने सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की सटीक परिभाषा बताते हुए कहा कि रसगुल्ले का नाम सुनकर जिसके मुख में पानी आ जाए वह मिथ्यादृष्टि और जिसकी आँखों में पानी आ जाए वह सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि विषय भोग-भोगना नहीं चाहता है पर क्या करें भोगना पड़ता है। वह घर में रहता है लेकिन कमल की तरह कीचड़ से अलिप्त रहता है। आसक्ती ही कर्म बंधन का मूल कारण है। अभी हम लोग कीड़े की तरह कीचड़ में पड़े हैं लेकिन अपने आपको कमल-सा निर्लिप्त बताते हैं यही आत्म-प्रवंचना है। जिसे मरणकाल में णमोकार मंत्र याद रहे, बस वही सम्यग्दृष्टि है।

□ नवभारत ३० मार्च ९३

# रात तभी तक है जब तक आँखें बंद है

**विश्वास धोखेबाज और तात्कालिक है जबकि श्रद्धा दीर्घकालिक होती है और अनुभूति त्रैकालिक होती है। जहर खाने से मर जाते हैं यह श्रद्धा है, अनुभूति नहीं। अनुभूति भोगा हुआ सत्य है जबकि श्रद्धा उधार सत्य है।**

इन्दौर। जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि जीवन प्रथम और मृत्यु अंतिम सत्य है। मृत्यु एक चिरन्तन सत्य है। मृत्यु जीवन से भी ज्यादा सत्यता भरी होती है। कोई कितना भी भाग-दौड़ करे आखिर में मृत्यु उसे अपने पंजे में दबोच ही लेती है। मृत्यु से डरना यानि मृत्यु को निमंत्रण देना है, और मृत्यु को डराना यानि मृत्यु की मृत्यु हो जाना है। मृत्यु की मृत्यु होती है "मृत्युमहोत्सव" मनाने में।

मुनिश्री तरुणसागरजी महाराज ने आगे कहा कि जीवन का सत्य वासना नहीं, साधना है। वासना का अर्थ है अपने से टूटकर बाहर की ओर दौड़ना। हम शरीर के लिए ही जीते हैं और शरीर के लिए ही मरते हैं। हम भीड़ के लिए जीते हैं, अच्छे जीवन जीने का अभिनय तो करते हैं लेकिन अच्छा-सच्चा जीवन जी नहीं पाते, इसलिए अभिनेता तो बन जाते हैं लेकिन सत्य और साधना को उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।

विश्वास, श्रद्धा एवं अनुभूति में अन्तर बताते हुए मुनिश्री ने कहा कि विश्वास धोखेबाज और तात्कालिक है जबकि श्रद्धा दीर्घकालिक होती है और अनुभूति त्रैकालिक होती है। जहर खाने से मर जाते हैं यह श्रद्धा है, अनुभूति नहीं। अनुभूति भोगा हुआ सत्य है जबकि श्रद्धा उधार सत्य है। अनुभव हो जाए तो श्रद्धा स्वतः हो जाती है, श्रद्धा करो - श्रद्धा करो यह कहने की जरुरत ही नहीं पड़ती। शक्कर मीठी है यह सुनकर नहीं, चखकर ही जाना जा सकता है। मुनिश्री ने पुरजोर शब्दों में कहा कि अनुभूति का सत्य सदा एक-सा होता है, अनुभूति के तल पर शब्दों का तो अन्तर हो सकता है, अनुभव का नहीं। आदीनाथ का अनुभव और महावीर का अनुभव एक था, यही एकमात्र कारण है कि जिन सिद्धांतों की प्ररुपणा आदिनाथ ने की थी वही प्ररुपणा महावीर ने की। महावीर ने नया धर्म नहीं चलाया अपितु विलुप्त सत्य की उद्घोषणा की है।

१३ वर्ष की सुकुमारवय में दीक्षित बालयोगी मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि रात तभी तक है, जब तक आँखें बन्द है। अगर हमारी आँखें खुली है तो सुबह सदा है। पांच हजार साल पहले कृष्ण ने आँखें खोली तो पाया कि सुबह

हो गई, महावीर और बुद्ध ने पच्चीस सौ साल पहले आँखें खोली और पाया कि सुबह हो गई। कुन्दकुन्द ने दो हजार साल पहले आँखें खोली तो और पाया कि सुबह हो गई, सुबह सदा है जरुरत है आँखें खोलने की। रात है इसलिए सो रहे हैं ऐसी बात नहीं है सो रहे हैं इसलिए रात है, रात में जागो तो भी सुबह है और दिन में सोओ तो भी रात है।

□ अज्ञात
३१ मार्च ९३

# निषेध निमंत्रण है

**धर्म गरीब की झोपड़ियों में निवास करता है क्योंकि दीन दुखियों की सेवा ही धर्म है, जिस प्रकार केवल अर्थशास्त्र पढ़ लेने मात्र से कोई करोड़पति नहीं हो जाता उसी प्रकार धर्मशास्त्र पढ़ लेने मात्र से कोई धर्मात्मा नहीं हो जाता।**

इन्दौर। प्रखर प्रवक्ता मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि निषेध में आकर्षण होता है। निषेध, निषेध नहीं, निमंत्रण है। जिस चीज के लिए मन को मना करो मन उसके प्रति ज्यादा उत्सुक हो जाता है और फिर भुलावा बुलावा सिद्ध हो जाता है। मन को मनाओ मत उसे मारो। मन को मारने में ही आत्मा का जीवन है।

मुनिप्रखर श्री तरण सागरजी ने आगे बताया कि धर्म मन की पवित्रता का नाम है। धर्म गरीब की झोपड़ियों में निवास करता है क्योंकि दीन दुखियों की सेवा ही धर्म है, जिस प्रकार केवल अर्थशास्त्र पढ़ लेने मात्र से कोई करोड़पति नहीं हो जाता उसी प्रकार धर्मशास्त्र पढ़ लेने मात्र से कोई धर्मात्मा नहीं हो जाता। धर्म जीवन की समग्रता है और प्रार्थना आत्मा की खुराक है। प्रार्थना सर्वोपरि ऊर्जा है। प्रार्थना का अर्थ डिस्चार्ज बैटरी को चार्ज कर लेना है। प्रार्थना से मानसिक शांति मिलती है। प्रार्थना से जीवन में क्रांति का सूत्रपात होता है।

मुनिराजश्री ने उपवास के बारे में चर्चा करते हुए कहा कि उपवास में केवल भोजन ही नहीं छोड़ना है, इन्द्रिय-भोग भी छोड़ना है। उपवास का अर्थ सिर्फ निराहार रहना नहीं होता, वरन् उपवास का अर्थ है आत्मा के निकट निवास। आत्म-निकटता के बिना उपवास उपवास नहीं केवल लंघन है। अभी हम उपवास के नाम पर पता नहीं क्या-क्या करते हैं। आत्म निकटता के बिना उपवास करने वाला व्यक्ति चौबीस घंटे भोजन करता है। शारीरिक नहीं, मानसिक भोजन तो हर पल चलता है।

उन्होंने भव्य-अभव्य का लक्षण बताते हुए कहा कि जो परमात्मा की पूजा में रत है वह भव्य है और जो परमात्मा को गाली दे रहा है वह अभव्य है। तीर्थंकर या संत अगर आपको भव्य कह दे तो इससे बढ़ा कोई पुरस्कार नहीं है और अभव्य कह दे तो इससे बड़ी दूसरी कोई गाली नहीं है। जिनवाणी के दो शब्द और संतों के अमृत प्रवचन सुनकर जिसका मन आनंद से भर जाता है, रोम-रोम पुलकित हो जाता है, वह भव्य और सम्यग्दृष्टि है भविष्य में मोक्ष का अधिकारी है।

□ दैनिक भास्कर
१ अप्रैल ९३

# समयसार औषध नहीं, टॉनिक है

**गुड़ और गोबर को एक समझना समता नहीं, जड़ता है। गोबर और गुड़ में राग-द्वेष का न होना ही समता है। समत्व की साधना ही समयसार की आत्मा है।**

इन्दौर। जैन संत श्री तरुणसागरजी ने कहाकि जो जीवन अनंत आनंद का कोष है लेकिन आज पीड़ा का महासागर बन गया है। क्यों? सिर्फ इसलिए कि मनुष्य जिसे पाने के लिए पैदा होता है उसे पा नहीं पाता, जिसे जानने के लिए पैदा होता है उसे जान नहीं पाता। मनुष्य सिर्फ जीने के लिए पैदा नहीं हुआ वह जानने के लिए भी पैदा हुआ है। जीवन का सच्चा आनंद स्वयं को जानने में है। आदमी दुनिया को जान लेता है, लेकिन अपने आपसे अजनबी बना रहता है। अपने आपको जानने वाला ही ज्ञानी है।

मुनिश्री ने आगे पुरजोर शब्दों में कहा कि, समयसार सिंहों का भोजन है उसे गधे नहीं पचा सकते। समयसार औषध नहीं टॉनिक है। टॉनिक का काम रोग को दूर करना नहीं, कमजोरी को दूर करना होता है। अभी हम रोगी हैं, हमें टॉनिक नहीं, औषधि चाहिए। समयसार वह गरिष्ठ भोजन है जिसे पचाने में कुन्दकुन्द जैसे मुनि ही समर्थ है। समयसार को कंठस्थ नहीं, हृदयस्थ करना है। हृदयस्थ समयसार ही जीवन में क्रांति ला सकता है। उन्होंने कहा टनभर भाषण की जगह कण भर आचरण अधिक प्रभावशाली होता है। लड्डू खाने से पेट भरता है, लड्डू-लड्डू कहने से नहीं विद्वान वह चम्मच है जो दूसरो को तो भोजन कराता है लेकिन स्वयं नहीं खाता। समयसार वाचन की नहीं, पाचन की चीज है।

मुनिश्री ने कहा कि, हम धरती से जुड़कर चलें। अभी हम आकाश की बाते करते हैं। पृथ्वी की बातें नहीं करते जिस पृथ्वी पर चलना है, जिस पृथ्वी पर जीना है और जिस पृथ्वी पर मरना है हम उसकी चर्चा नहीं करते, लेकिन जिस आकाश से हमारा दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं उसकी चर्चा में मशगूल रहते हैं। हम आकाश में जीते हैं, इसलिए धरती के आनंद से वंचित रह जाते हैं। वर्तमान के मुनियों की उपेक्षा करके कुन्दकुन्द की चर्चा करना आकाश की चर्चा करना है। हमें मुनियों की परीक्षा नहीं, प्रतीक्षा करनी चाहिए कि कब उनका पावन सानिध्य मिले?

उन्होंने कहा कि, गुड़ और गोबर को एक समझना समता नहीं, जड़ता है। गोबर और गुड़ में राग-द्वेष का न होना ही समता है। समत्व की साधना ही समयसार की आत्मा है।

□ **चौथा संसार २ अप्रैल ९३**

# क्रोध तात्कालिक पागलपन है

**क्रोध मूर्च्छा है, तंद्रा है । क्रोध और पानी हमेशा नीचे की ओर बहता है। क्रोध हमेशा अपने छोटे पर उतरता है । क्रोध को दबाने की जरुरत नहीं है, क्रोध को देखने और जानने की जरुरत है । दमन और वमन दोनों खतरनाक है ।**

इन्दौर । मुनिप्रवर श्री तरुणसागरजी महाराज ने कहा कि, क्रोध तात्कालिक पागलपन है । क्रोध क्षणिक है । अपेक्षा की उपेक्षा ही क्रोध का कारण है । हम जिनसे सम्मान की अपेक्षा रखते हैं उनसे सम्मान न मिलने पर क्रोध आ जाता है। अपेक्षा ही दुःख का मुख्य कारण है । क्रोध मूर्च्छा है, तंद्रा है । क्षणभर का क्रोध ताजिन्दगी अभिशाप बन जाता है । एक क्षण भी होश में जी लोगे तो जीवनभर का होश सद जाएगा । क्रोध का जवाब क्रोध नहीं, क्षमा है । भौंकने का जवाब भौंककर कुत्ता और लात का जवाब लात से गधा ही देता है । हम इंसान है, महान है, क्रोध का जवाब सहिष्णुता से दें ।

१३ वर्ष की सुकुमार वय में वैराग्य की धारा में बहने वाले युवा सम्राट मुनि श्री तरुणसागरजी ने कहा कि, क्रोध और पानी हमेशा नीचे की ओर बहता है । क्रोध हमेशा अपने से छोटे पर उतरता है । क्रोध को दबाने की जरुरत नहीं है, क्रोध को देखने और जानने की जरुरत है । जो क्रोध को देख लेता है उसका क्रोध जाता रहता है । दबाना ही खतरनाक है, कब तक दबा कर रखोगे एक दिन तो उभरेगा ही । दमन और वमन दोनों खतरनाक है ।

उन्होंने कहा कि, अभी हम क्रोध करते हैं बाद में पश्चाताप कर लेते हैं कि मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए । लेकिन निमित्त मिलने पर फिर क्रोध कर बैठते हैं, फिर पश्चाताप करने लगते, यह क्रम जीवनभर चलता है । पश्चाताप नहीं, प्रायश्चित करना है क्रोध के परिणामों पर विचार करना है।

परम श्रद्धेय मुनिश्री ने कहा कि, ईश्वर को पांडित्य नहीं, सरलता चाहिए । जो बालक के समान सरल है और मुनिमनसम उज्जवल हो वे ही प्रभु साम्राज्य के अधिकारी है । जो कुटिल है, वक्र है वे टेढ़ी मेढ़ी लकड़ी के समान चूल्हे में जलाने के काम आते हैं । सीधी सरल लकड़ी का ही सोफा, कुर्सी आदि फर्नीचर बनता है ।

मुनिश्री ने कहा कि, कषाय, कर्ज, शत्रु और रोग इन्हें जड़ से समाप्त करना जरुरी है, कारण कि ये जरा भी रह जाये तो फिर बढ़ने लगते हैं । मानसिक विकारों से मुक्त होना ही मोक्ष है ।

□ चेतना ४ अप्रैल ९३

मुनि श्री भारत जैन महामंडल, शाखा इन्दौर सभा में

# "मैं" की मृत्यु ही "महावीर" का जीवन है

**महावीर की विराट विरासत के मालिक वे हैं जो आचरणवान हैं। अहंकार एक आध्यात्मिक कैंसर है जो जीवन के सद्गुणों को राख कर देता है।**

इन्दौर। उदीयमान संतश्री तरुणसागरजी महाराज ने कहा कि भगवान महावीर को आज हमने मंदिरों में बैठा दिया है। जबकि हमें उन्हें अपने आचार, विचार, व्यापार और आचरण में लाना चाहिए था। महावीर किसी व्यक्ति का नाम नहीं, अपितु आचरण का नाम है। सदाचरण और सहिष्णुता के पथ पर चलकर ही उन तक पहुँचा जा सकता है।

मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि अहंकार एक ऐसा दुर्गुण है जिससे अछूता मनुष्य दुनिया में मिलना मुश्किल है। छोटे बालक में भी अहंकार का पुट देखा जा सकता है, तो मृत्यु की कगार पर खड़े वृद्ध व्यक्ति में भी अहंकार की आवाज सुनी जा सकती है। अहंकार एक आध्यात्मिक कैंसर है जो जीवन के सद्गुणों को राख कर देता है। संप्रदाय अंहाकर के ही तो प्रतीक है। मुनिश्री ने आगे कहा कि यदि महावीर को पाना है तो अहंकार और ममकार को छोड़ना होगा। मोह और मूर्च्छा को तोड़ना होगा।

मुनिश्री ने कहा कि हमने पिछले वर्ष भी महावीर जयंति मनाई थी, और आने वाले वर्ष में भी मनायेंगे लेकिन इससे क्या होगा ? हमें महावीर जयंति मनाना ही नहीं है, महावीर को मानना भी है। अभी हम महावीर को मानते नहीं सिर्फ जानते हैं। जानना एक बात है, मानना दूसरी बात है। मानना महत्वपूर्ण है। जानना तो फिजूल है। अभी हम महावीर के बारे में तो जानते हैं लेकिन महावीर को नहीं जानते। महावीर को जानने का मतलब होता है महावीरमय हो जाना। बिना महावीरमय हुए महावीर को जाना ही नहीं जा सकता। "मैं" की मृत्यु ही महावीर का जीवन है।

मुनिश्री ने कहा कि एक सर्वमान्य जैन मंच होना चाहिए जिससे जैनत्व की आवाज बुलंद की जा सके। हम दिगम्बर–श्वेताम्बर के आपसी मत–भेद भुलकर एकता का परिचय देवें। हम मतभेद रखें, लेकिन मनभेद न रखें। हम संतरे की तरह ऊपर से एक दिखें।

उन्होंने आगे कहा कि महावीर जयंति के पावन प्रसंग पर उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह, सह– अस्तित्व व सहिष्णुता को आत्मसात करें यही उनके प्रति हमारी आत्मिक आस्था की अभिव्यक्ति होगी और यही जीवन्त अर्ध्य होगा।

□ **नईदुनिया ५ अप्रैल ९३**

मुनिश्री इतवारिया बाजार में

# महावीर "कभी" के लिए नहीं, "अभी" के लिए है

**नग्नता से पवित्र निर्दोष इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। केवल वस्त्र छोड़ना ही पर्याप्त नहीं है, विकारों का परित्याग भी जरुरी है। वस्त्र छोड़ने से नंगापन तो आ सकता है लेकिन नग्नता नहीं। साधना की कसौटी नग्नता है, नंगापन नहीं।**

इन्दौर। प्रखर प्रवक्ता मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि भगवान महावीर कभी के लिए नहीं, अभी के लिए है और सभी के लिए हैं। महावीर आज भी प्रासंगिक है, उन्होंने शाश्वत जीवन – मूल्यों की स्थापना की थी, वे आज भी आदर्श विश्व के निर्माण में सहयोगी हैं। महावीर स्वामी ने अहिंसा, अनेकांत, अपरिग्रह, साधना और संयम के जो सूत्र दिये थे वे अध्यात्म की दृष्टि से तो असाधारण है ही, राजनैतिक दृष्टि से भी उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

कविचेता मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि आज जीवन्त महावीर की आवश्यकता है और जीवन्त महावीर वह है जिसका जीवन आचरण का प्रतीक बन जाता है। विश्व में व्याप्त ज्वलंत समस्याओं का समाधान अणुबम कदापि नहीं हो सकता, समस्याओं का समाधान अणुबम नहीं, अणुव्रत है। अणुव्रत की साधना हमें एक अच्छा नागरिक बनने की विधि तो सिखाती ही है, हमारी "इच्छा शक्ति" को भी प्रबल बनाती है।

मुनिश्री ने अपने ओजस्वी धाराप्रवाह प्रवचन में बड़े ही बुलंदगी के स्वर में कहा कि लोग दिगम्बर जैन मुनि की नग्नता को देखकर अशलीलता का अनुभव करते हैं वे लोग बड़े नादान, नासमझ तथा पूर्वाग्रह से ग्रसित है। नग्नता से पवित्र निर्दोष इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। वस्त्रों की आवश्यकता उन्हें है जो अपने मन और इन्द्रियों के दास हैं। दिगम्बर जैन मुनि इस पृथ्वी के जीवन्त है। उन्होंने कहा कि केवल वस्त्र छोड़ना ही पर्याप्त नहीं है, विकारों का परित्याग भी जरुरी है। वस्त्र छोड़ने से नंगापन तो आ सकता है लेकिन नग्नता नहीं। साधना की कसौटी नग्नता है, नंगापन नहीं। नग्नता आती है मन के विकार शून्य होने तथा कषयों के परित्याग से।

मुनिश्री ने कहा कि महावीर का साधु साधनों से नहीं, साधना से होता है। भागने से नहीं, भावना से होता है। उपकरण से नहीं, आचरण से होता है। उन्होंने बताया कि केवल महावीर का संन्यास ऐसा है जिसमें सिर्फ छोड़ना पड़ता है, ग्रहण नहीं करना पड़ता।

□ चौथासंसार ६ अप्रैल ९३

## कानून की निगाह से तो बच सकते हो, कर्मों की नहीं

**व्यक्ति हंसी-हंसी में कर्म बंधन कर लेता है लेकिन फल भोगते समय रोता है । हमें चाहिए कि अब हम ऐसा पुरुषार्थ करें कि कर्म बांधते समय रोएं और उनका फल भोगते समय हंसे ।**

इन्दौर । प्रखर प्रवक्ता जैन संतश्री तरुणसागरजी ने जिला जेल इन्दौर में कैदियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आदमी कानून की निगाह से तो बच सकता है लेकिन कर्मों की नजरों से नहीं बच सकता है । करनी का फल तो मिलता ही है आज मिले या कल । कर्म किसी को नहीं छोड़ते हैं । व्यक्ति हंसी-हंसी में कर्म बंधन कर लेता है लेकिन फल भोगते समय रोता है । हमें चाहिए कि अब हम ऐसा पुरुषार्थ करें कि कर्म बांधते समय रोएं और उनका फल भोगते समय हंसे। बन्धन से बढ़कर दूसरा दुःख नहीं और स्वतंत्रता से बढ़कर कोई आनंद नहीं ।

मुनिप्रवर श्री तरुणसागरजी आगे बड़ी ही मार्मिक शैली व हृदयस्पर्शी भाषा में कहा कि कल्पना करो अपनी बहिन के बारे में रक्षा बन्धन पर्व पर उस पर क्या गुजरती होगी ? विचार करो अपने माँ-बाप के बारे में, कैसे सिर झुका कर चलते होंगे ? सोचो अपनी पत्नि के बारे में सहेलियों को क्या जवाब देती होगी ? अपने गिरेबां में झांकों और पूछो अपने मन से क्या तुमने अपने परिवार के नाम और प्रतिष्ठा को कलंकित नहीं किया है ? एक वासना के आवेश और क्रोध के क्षणिक आवेग में आकर वह कर डाला, जिसकी इतनी लम्बी सजा मिली । खैर कोई बात नहीं । सुबह का भूला शाम घर आये भूला न कहाय । इंसान हैं, इंसान से गलतियां होना संभव है, क्योंकि इंसान तो गलतियों का पुतला है । दुनिया में ऐसा कोई इंसान नहीं है जो गलती न करता हो किन्तु जो गलती करने के बाद प्रायश्चित और पश्चाताप करके गलती को सुधार लेता है वही इंसान है, लेकिन जो गलतियों पर गलतियां किये जाता है उसे इंसान कहलाने का अधिकार ही नहीं, वह तो पशु से बदतर है, हैवान है । संकल्प करो कि हम जेल से अच्छा नागरिक बनकर निकलेंगे और आने वाला समय परोपकार व जनकल्याण में व्यतीत करेंगे । मुनिश्री के इन मार्मिक व आत्मीय शब्दों से कैदी भाईयों की आँखें डबडबा आई थीं, कई कैदियों को तो आंसू पोंछते भी देखा गया ।

मुनिवर ने आगे कहा कि परोपकार के लिए उठे हाथ ही शरीर को सार्थक बना सकते हैं । शरीर से बैकुंठ की यात्रा भी कर सकते हैं और नर्क में भी पहुँचा जा सकता है । शरीर का सदुपयोग मोक्ष का कारण है और दुरुपयोग जेल का । ये

जेल की चार दीवारें ही कारागृह नहीं है। यह शरीर भी कारागृह है जिसमें हमारा परमात्मा कैद है। उस परमात्मा को स्वतंत्र कराना ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

मुनिश्री के प्रवचन कैदियों व अधिकारी वर्ग ने गंभीरता से सुने तथा कैदियों द्वारा बुरी आदतों को छोड़ने का संकल्प लिया गया। मुनिश्री ने कैदियों से चर्चाएं भी की और उन्हें अपना मंगल आशीर्वाद भी दिया। यहाँ उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व भी मुनिश्री रायपुर, छतरपुर, सिवनी, छिंदवाड़ा, उज्जैन, दुर्ग जिला जेलों में प्रवचन हेतु जा चुके हैं। जेल प्रवचन कार्यक्रम अहिल्या जूनियर चेम्बर के तत्वावधान में आयोजित था।

□ नवभारत
७ अप्रैल ९३

# संत, नेताओं से दूर रहें वरना उन्हें सैप्टिक हो जायेगा

**आज का हर इंसान दुःखी क्यों है ? इस प्रश्न के उत्तर में मुनि तरुणसागरजी ने कहा कि संसार का हर आदमी इसलिए दुःखी है क्योंकि उसका पड़ोसी सुखी है । हमारा सुख पड़ोसी के दुःखी होने में है ।**

इन्दौर । नेता जंग लगा लोहा है । संतों को नेताओं से दूर रहना चाहिए वरना उन्हें सैप्टिक हो सकता है । जिसकी घर में कोई बकत नहीं होती वह सड़क पर आकर नेता बन जाता है, और समाज का नेतृत्व करने लगता है । ऐसे नेता समाज व राष्ट्र को कहाँ ले जायेंगे, भगवान ही जाने।

ये विचार मुनिश्री तरुणसागरजी ने जैन कॉलोनी में "जैन मुनि से मिलिए" कार्यक्रम में एक प्रश्न के उत्तर में कहे ।

**आज का हर इंसान दुःखी क्यों है** ? इस प्रश्न के उत्तर में मुनि तरुणसागरजी ने कहा कि संसार का हर आदमी इसलिए दुःखी है क्योंकि उसका पड़ोसी सुखी है । हमारा सुख पड़ोसी के दुःखी होने में है । आदमी रात में सोते–सोते विचार करता है कि हे भगवान । पड़ोसी का सत्यानाश हो जाए । लेकिन याद रखना जिस प्रकार कौए के कोसने से ढोर नहीं मरते उसी प्रकार हमारे सोचने से पड़ोसी का कुछ नहीं बिगड़ता । लेकिन यह सोचकर हम अपनी औकात तो बता ही देते हैं और यही औकात हमारे दुःख का मूल कारण है । यह पूछे जाने पर कि **कहने की अपेक्षा करना कठिन क्यों है** ? के उत्तर में जैन मुनि ने कहा कि कहने में तो मात्र दो तोले की जीभ हिलाना पड़ती है जबकि करने में दो मन का शरीर हिलाना पड़ता है ।

**जीवन क्या है** ? के उत्तर में महाराज श्री तरुणसागरजी ने कहा कि अहंकार की मत्यु ही जीवन है। अहंकार दुःख है क्योंकि अहंकार परमात्मा के विरोध की दिशा है और परमात्मा का विरोध स्वयं का विरोध है । **प्रेम और वासना में क्या अन्तर है** ? इस प्रश्न के उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि प्रेम आक्सीजन की तरह प्राणपोषक है जबकि वासना हाइड्रोजन की तरह प्राणशोषक है । प्रेम में तृप्ति है, संतोष है, समर्पण है जबकि वासना में अतृप्ति है, असंतोष है, स्वार्थपरता है । प्रेम ही प्रार्थना है और प्रार्थना ही परमात्मा है जबकि वासना ही नर्क है ।

**अयोध्या में मंदिर कब बनेगा** ? के उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि जिस दिन मंदिर निर्माण के हिमायती तथाकथित धार्मिक व नेताओं के मन में राम बस जायेंगे उस दिन राम मंदिर बन जायेगा अभी सिर्फ उनकी जिह्वा में राम है, जीवन में नहीं।

अभी सिर्फ राम के नाम पर अपना काम हो रहा है।

**शंकरजी मरघट में निवास क्यों करते हैं?** पर जैन मुनिराज ने कहा कि शंकरजी मरघट में निवास इसलिए करते हैं कि हमें अपनी मौत को भी याद रखना है, अकसर हम सब चीजों को तो याद रखते हैं लेकिन मौत को भूल जाते हैं।

□ नईदुनिया
४ मार्च, ९३

# मंदिर–मस्जिद के नाम पर लड़ना धर्म नहीं, धोखा है

**जैन समाज इतना संपन्न क्यों है ? मुनिश्री ने कहा कि जैन समाज की संपन्नता का कारण उसका निर्व्यसन होना है । आज भी जैन समाज के अस्सी–पिच्चासी फीसदी लोग निर्व्यसनी व संयमी है । अगर इस मुल्क की हर कौम व धर्म के अनुयायी व्यसनमुक्त जीवनयापन का व्रत कर लें तो सारा मुल्क संपन्न ही नहीं स्वर्ग बन जाएगा ऐसा मेरा मानना है ।**

इन्दौर १२ मार्च । आदमी पहले इंसान है फिर हिन्दू या मुसलमान । मनुष्य सर्वोपरि है क्योंकि मंदिर–मस्जिद और गुरुद्वारे में जो देव प्रतिमा प्रतिष्ठित है वे सब मनुष्य ने की है । राम, रहीम, मंदिर व मस्जिद के नाम पर लड़ना धर्म नहीं स्वयं के साथ धोखा है, पागलपन है ।

ये विचार तरुणसागरजी ने छावनी में "जैन मुनि से मिलीए" कार्यक्रम के तहत एक प्रश्न के उत्तर में व्यक्ति किए । **पंथ और धर्म में क्या अंतर है ?** इस प्रश्न के उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि धर्म में सत्य दर्शन है जबकि पंथ में आग्रह है । धर्म में सारा संसार एक ही चौका है, उसमें कोई छुआछूत नहीं है जबकि पंथ में चौकेबाजी इतनी जबर्दस्त होती है कि हर एक बात में छुआछूत, घृणा–द्वेष की गंध आती है । **संस्कारों का जीवन में क्या महत्व है ?** प्रखर चिंतक मुनि तरुणसागरजी ने कहा कि संस्कारों से जीवन संवरता है । संस्कार की मुहर जीवन के सिक्के को बहुमूल्य बना देती है । अगर हम नई पीढ़ी को धार्मिक व नैतिक संस्कार नहीं दे रहे हैं तो समझना हम अपने घर में आतंकवादी पैदा कर रहे हैं जिनसे भविष्य में समाज/राष्ट्र व धर्म को खतरा है ।

यह पूछे जाने पर कि **आपने इतनी कम उम्र में संन्यास क्यों ले लिया?** मुनिश्री ने कहा कि संन्यास के लिए उम्र का कोई तकाजा नहीं । संन्यास तो वह अप्रत्याशित घटना है जो सहज घट जाती है । **बुढ़ापे में संन्यास लेना ज्यादा बेहतर होता ?** मुनिराज ने कहा कि बुढ़ापे में संन्यास लेना तो वैसा ही है जैसे कि आम खाकर गुठली दान कर देना । भोग सामग्री सामने हो और इंदियाँ भी भोगने में समर्थ हो और फिर त्याग किया जाए तो ही सच्चा त्याग है । कारण कि बुढ़ापे में तो गीदड़ भी संन्यास ले लेता है, इसमें कौन–सी बहादुरी है ।

**राजनीति में धर्म जरुरी है क्या ?** के उत्तर में उन्होंने कहा कि जी हां, जरुरी ही नहीं अनिवार्य भी है । लेकिन धर्म में राजनीति कतई जरुरी नहीं है, धर्म में राजनीति का प्रवेश हो जाने पर धर्म विकृत हो जाता है और राजनीति में धर्म का समावेश

होने पर राजनीति का शुद्धिकरण हो जाता है। **आज का युवा वर्ग धर्म से विमुख क्यों है ?** के उत्तर में तरुणसागरजी ने कहा कि तथाकथित धार्मिकों ने धर्म का लबादा ओढ़कर धर्म को बदनाम कर दिया है। वे मंदिरों में झूम- झूमकर पूजा पाठ करते हैं और सड़क पर आकर झगड़ते हैं, उनके इस दोहरे जीवन को देखकर युवा वर्ग धर्म से दूर हो गया।

**झगड़ालू पत्नि मिल जाए तो क्या करना चाहिए ?** इस प्रश्न के समाधान में मुनिश्री ने कहा कि ईश्वर की इच्छा समझकर सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। अगर पत्नि अग्नि बनती है तो अपने को पानी बन जाना चाहिए। वैसे पति को सूर्य की भांति तेजस्वी और पत्नि को चन्द्रमा की भांति शीतल होना चाहिए।

**जैन समाज इतना संपन्न क्यों है ?** मुनिश्री ने कहा कि जैन समाज की संपन्नता का कारण उसका निर्व्यसन होना है। आज भी जैन समाज के अस्सी-पिच्चासी फीसदी लोग निर्व्यसनी व संयमी है। अगर इस मुल्क की हर कौम व धर्म के अनुयायी व्यसनमुक्त जीवनयापन का व्रत कर लें तो सारा मुल्क संपन्न ही नहीं, स्वर्ग बन जाएगा ऐसा मेरा मानना है।

□ नईदुनिया
१३ मार्च ९३

# जो स्वार्थों व राजनीति से ग्रस्त हो

# वह संत नहीं हो सकता

**आदमी का विश्वास जब-जब सत्य, अहिंसा से उठता है, तब तक भारत में महाभारत मचता है। मुनिश्री ने कहा कि जो लोग केवल मानवसेवा की बात करते हैं, मैं उनका विरोधी हूं। मैं, प्राणी सेवा की बात करता हूं। महावीर के संविधान में मूक पशु-पक्षियों के अधिकार भी सुरक्षित है।**

इन्दौर। युवा संत श्री तरुणसागरजी ने कहा कि, मंदिर के लिए विवाद अनुचित है। आज राम जिह्वा पर तो है लेकिन जीवन में नहीं है। मंदिर बन भी जाए तो क्या फर्क पड़ने वाला है जीवन में तो राम है नहीं। आज जो हालात पैदा किए गए हैं उनमें भगवान राम आ जाए और उनसे पूछे तो वे भी कहेंगे मुझे मंदिर से निकाल कर मन में बसाओ। ये विचार मुनिश्री ने " जैन मुनि से मिलिए" कार्यक्रम के तहत एक प्रश्न के उत्तर में दिए।

**संत के क्या लक्षण है ?** पत्रकारों द्वारा यह पूछे जाने पर प्रखर प्रवक्ता युवा सम्राट तरुणसागरजी ने कहा कि संत वह होता है जो समाज, राजनीति के स्वार्थो से मुक्त होता है। वह किसी के दिल दुखाने की नहीं वरन प्राणी मात्र के कल्याण की भावना से ही कार्य करता है। आज हर एक को संत कहना ठीक नहीं, संत का मतलब जहाँ आकर संसार सागर का अंत हो जाता है। जब-जब समाज, संतों से जुड़ता है, समाज का उत्थान होता है। समाज रूपी हाथी को वश में रखने के लिए संतों का अंकुश जरुरी है।

एक प्रश्न के जवाब में मुनिश्री ने कहा कि, आदमी का विश्वास जब-जब सत्य, अहिंसा से उठता है, तब तब भारत में महाभारत मचता है। मुनिश्री ने कहा कि जो लोग केवल मानवसेवा की बात करते हैं, मैं उनका विरोधी हूं। मैं, प्राणी सेवा की बात करता हूं। क्या इस जगत में पशु- पक्षियों की सेवा जरुरी नहीं है ? क्या उन्हें जीने का अधिकार नहीं है। महावीर के संविधान में मूक पशु-पक्षियों के अधिकार भी सुरक्षित है। जितनी विशालता भगवान महावीर और जैन दर्शन के पास में है उतनी अन्यत्र नहीं है। जैन धर्म सदैव प्राणी सेवा का संदेश देता है।

**भारत महान है, क्यों ?** के उत्तर में मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि, भारत की महानता की कसौटी उसकी अक्षुण्ण संस्कृति व सभ्यता है। भारत में सत्ताधीशों की नहीं संन्यासियों की पूजा होती है। यहाँ भोगियों की नहीं, योगियों की चरणवंदना

की जाती है। भारत में त्याग पूजा जाता है। देश का सम्राट भी कुटिया में रहने वाले साधु की पाद-पूजन करके अपना सौभाग्य समझता है।

**क्या संतों को राजनीति में आना चाहिए ?** के उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि, राजनीति गंदी और विकृत हो गई है। ऐसी राजनीति में संत जाए तो वे कैसे निष्कलंक बने रह सकते हैं, राजनीति तो काजल की वह काली कोठरी है जिसमें जाने पर दाग लग ही जाता है। संत राजनीति से दूर रहे यही उचित है। **आज कुछ तथाकथित संन्यासी सत्ता का भी सुख भोग रहे हैं इस विषय में आप क्या सोचते हैं ?** के उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि वह संन्यासी नहीं, उनका वह संन्यास उन्हें सत्य से परिचय नहीं करा सकता। संन्यास की आड़ में सत्ता हथियाने का एक उपक्रम मात्र है। आज संन्यासी की परिभाषा ही बदल गई। आज देश में पचास लाख संन्यासी हैं मगर कितने ऐसे हैं जो स्वार्थ को छोड़कर जनकल्याण की बात करते हैं। संतों के पास वाणी का विलास नहीं, जीवन का निचोड़ होना चाहिए।

**तांत्रिक चंदास्वामी का जैन धर्म में क्या स्थान है ?** के उत्तर में मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि चंद्रास्वामी का जैन दर्शन में कोई स्थान नहीं है।

□ दैनिक भास्कर
१६ मार्च ९३

# राजनीति और झूठ का चौली–दामन का सम्बन्ध

**जैन समाज दान देने में सबसे आगे है, क्यों ? के समाधान में तरुणसागरजी ने कहा कि जैनों के आदर्श महावीर स्वामी ने मांगना नहीं, देना सिखाया है। महावीर ने अर्जन के साथ, विसर्जन का भी सूत्र दिया, यही कारण है कि जैन समाज में दान की परम्परा सर्वाधिक है।**

इन्दौर। राजनीति और झूठ का चौली–दामन का संबंध है। झूठ राजनीति के लिए आक्सीजन है। झूठ धोखा है, न केवल दूसरों के साथ अपितु अपने साथ भी। यद्यपि राजनीतिज्ञ सत्य की कसम खाते हैं लेकिन हर पल झूठ से काम चलाते हैं। कभी हमारा जीवन सत्य का जीवन्त प्रतीक माना जाता था, लेकिन आज धोखाधड़ी। छल–फरेब का प्रतीक बन गया है।

ये विचार जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने परदेशीपुरा में "जैन मुनि से मिलिए" कार्यक्रम के तहत एक प्रश्न के उत्तर में व्यक्त किए। **धर्म क्या है ?** के उत्तर में मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि, धर्म वह है जो मन के दायरे को दरिया बना दे। धर्म विराट है लेकिन आज धर्म के ठेकेदारों ने धर्म को संकीर्णता की परिधि में बन्द करके उसके असली चेहरे को ढक दिया है।

यह पूछे जाने पर कि **दूषित पर्यावरण का कारण क्या है ?** मुनिश्री ने कहा कि, दूषित पर्यावरण हमारे दूषित विचारों का प्रतिफल है। मनो–प्रदूषण सबसे बड़ा खतरनाक प्रदूषण है।

**आज धर्म तोड़ने का काम कर रहा है, क्या यह सही है ?** के उत्तर में महाराजश्री ने कहा कि धर्म नहीं, संप्रदाय तोड़ रहा है। तोड़ता संप्रदाय है, धर्म तो जोड़ने का काम करता है। धर्म दिल के घावों पर नमक नहीं मरहम लगाता है। धर्म के नाम पर झगड़े, दंगे और लूट–पाट करना शर्मनाक है। यह पूछे जाने पर कि **धर्म के नाम पर वोटों की राजनीति करने वाले को आप कैसा समझते हैं?** प्रखर चिंतक श्री तरुणसागरजी ने कहा कि वे धर्म के सबसे बड़े धोखेबाज हैं। ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहिए।

**सांप्रदायिकता क्या है ?** के उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि सांप्रदायिकता एक अवसरवादिता है, जो धर्म के आवरण को लपेट कर अपना हित सिद्ध करती है। संप्रदाय के केन्द्र में स्वार्थ निहित रहता है इसलिए संप्रदाय विग्रह व विद्वेष का कारण बन जाता है। **भारतीय संस्कृति के बारे में आपके क्या विचार हैं ?** मुनिश्री ने कहा

कि भारतीय संस्कृति अद्‌भुत संस्कृति है। इस संस्कृति में "एकता" में अनेकता व "अनेकता में एकता" के दर्शन होते हैं। भारतीय संस्कृति मानवता की संस्कृति है। इसके सिद्धान्त सार्वभौमिक व सार्वकालिक है।

जैन समाज दान देने में सबसे आगे है, क्यों ? के समाधान में तरुणसागरजी ने कहा कि जैनों के आदर्श महावीर स्वामी ने मांगना नहीं, देना सिखाया है। महावीर ने अर्जन के साथ, विसर्जन का भी सूत्र दिया, यही कारण है कि जैन समाज में दान की परम्परा सर्वाधिक है। देश में उत्पन्न विषम परिस्थिति के लिए कौन जिम्मेदार है ? के उत्तर में जैन मुनि ने कहा कि देश का प्रत्येक नागरिक जिम्मेदार है।

□ नवभारत
२३ मार्च ९३

# धर्म धोखाधड़ी नहीं, हम धोखेबाज हैं

**धर्म का उपयोग नाव के रूप में करना चाहिए। धर्म नाव है, सिर पर ढोकर ले जाने वाला बोझ नहीं। धर्म वह नाव है जो दूसरों का बोझ तो ढोती है लेकिन दूसरों के लिए बोझ नहीं बनती है, जैसे पांव भर का छोटा–सा तुम्बा तीन मन का शरीर नदी से पार लगा देता है उसी प्रकार ढाई अक्षर का धर्म शब्द भी आत्मा को भवसागर से पार लगा देता है। संसार एक समुद्र है और धर्म नाव।**

इन्दौर। आज राजनीति विकृत हो गई है। वह छल–फरेब, मायाचारी व झूठ का अजायबघर बन चुकी है। राजनीति पर धर्म का अंकुश जरुरी ही नहीं अनिवार्य भी है। धर्म के अंकुश रहित राजनीति और पति के नियंत्रण रहित स्त्री दोनों ही विकृत, पदच्युत और खतरनाक रूप धारण कर लेती है। विकृत राजनीति का शुद्धिकरण धर्म के निर्मल जल से ही संभव है। धर्म शाश्वत है, और राजनीति सामयिक है।

ये विचार सुप्रसिद्ध जैन संत मुनिश्री तरुणसागरजी महाराज ने विजयनगर में "जैन मुनि से मिलिए" कार्यक्रम के तहत एक प्रश्न के उत्तर में व्यक्त किए। **परमात्मा नहीं है और धर्म धोखाधड़ी है क्या यह सही है ?** के उत्तर में मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि परमात्मा तो सदा है अभी भी है, यहीं है, लेकिन हमारे पास आँखें नहीं है। हम अंधे लोग हैं और अंधे लोग परमात्मा को नहीं देख सकते। तुम्हारी ये चर्मचक्षु, छोटी–छोटी आँखें उस विराट व असीम परमात्मा को देखने में समर्थ नहीं है। श्रद्धा की आँखों से ही परमात्मा को देखा जा सकता है। **क्या धर्म धोखाधड़ी है ?** के उत्तर में मुनिश्री ने बताया कि धर्म तो यथार्थ है। लेकिन हम धोखेबाज हैं इसलिए धर्म भी हमें धोखाधड़ी नजर आता है।

**यह पूछे जाने पर कि शिक्षा का लक्ष्य क्या होना चाहिए ?** के उत्तर में उन्होंने बताया कि शिक्षा का लक्ष्य अपने को सुधारना व दूसरों को संभालना होना चाहिए। **जग का सुधार कैसे हो सकता है ?** सुधार का शुभारंभ अपने आप से हो तो जग का सुधार हो सकता है। हम बदलेंगे तो ही युग बदलेगा।

**सारे विश्व को एक सूत्र में कैसे बांधा जा सकता है ?** के समाधान में श्री तरुणसागरजी ने कहा कि "वसुधैव कुटुम्बकम" की उदात्त भावना अगर हर मन में घर कर जाए तो सारा विश्व एक सूत्र में बंध सकता है। इसके लिए हमें सारे संसार को एक कुटुम्ब मानकर चलना होगा। सबके सुख में अपना सुख और सबके जीवन में अपना जीवन है, इस भावना को विकसित करना होगा।

**जीवन क्या है ?** के उत्तर में मुनिश्री ने बताया कि जीवन एक अमूल्य अवसर और भव्य जागरण है। अवसर का उपयोग वे ही कर पाते हैं जो संकल्प, साहस और धैर्य के धनी हैं। भव्य जागरण सिर्फ उन्हीं के लिए सिद्ध हो सकता है जो अपनी निंद्रा और मूर्च्छा को तोड़ने के लिए तैयार है।

**धर्म का उपयोग किस रूप में करना चाहिए ?** के उत्तर में प्रखर चिंतक मुनिश्री तरुणसागरजी ने बताया कि धर्म का उपयोग नाव के रूप में करना चाहिए। धर्म नाव है, सिर पर ढोकर ले जाने वाला बोझ नहीं। धर्म वह नाव है जो दूसरों का बोझ तो ढोती है लेकिन दूसरों के लिए बोझ नहीं बनती है, जैसे पांव भर का छोटा-सा तुम्बा तीन मन का शरीर नदी से पार लगा देता है उसी प्रकार ढाई अक्षर का धर्म शब्द भी आत्मा को भवसागर से पार लगा देता है। संसार एक समुद्र है और धर्म नाव।

**मनुष्य अग्नि परीक्षा से गुजरकर ही महान क्यों बनता है** इस प्रश्न के उत्तर में मुनिश्री ने कहा, गुलाब कांटों की सेज पर ही खिलता है मखमल की शै या पर नहीं। यह पूछे जाने पर कि अध्यात्म विज्ञान क्या है, पर मुनिश्री ने बताया कि अध्यात्म विज्ञान जीवन विज्ञान है। इसमें जीवन की कला निहित है। जीवन का सौम्य विकास आध्यात्म विज्ञान का प्रमुख लक्ष्य है।

□ नईदुनिया
१६ अप्रेल ९३

# आज भाई तो जिंदा है, लेकिन भाईचारा मर गया है

**पहले के साधु संत जंगलों में साधना किया करते थे आजकल आप लोग शहरों में क्यों आ गए ? के उत्तर में मुनिश्री ने बड़े ही सटीक शब्दों में उत्तर दिया और कहा कि पहले जंगलों में खूंखार शेर–चीते रहते थे उनके बीच में साधना करने से कर्मों की निर्जरा होती थी लेकिन आज न तो जंगल रहे और न ही शेर । अब जंगल के शेर शहर में आ गए इसलिए हम लोग भी शहर में आ गए ।**

इन्दौर । आज भाई तो जिंदा है, लेकिन भाईचारा मर गया है । मनुष्य धीरे–धीरे संवेदनशीलता खोता जा रहा है, उसके हृदय में करुणा का स्रोत सूखता जा रहा है। आज हमने अपने आदर्शों व सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक मूल्यों को ताक पर रख दिया है, आज प्रेम की जगह स्वार्थ ने व संस्कार की जगह उद्दण्डता ने ले लिया है, नई पीढ़ी संस्कारहीन होती जा रही है, उसके मन में 'खाओ, पियो और मौज करो कल किसने देखा' की भावना बड़ी तेजी के साथ घर करती जा रही है । आज के किशोरों व युवाओं को फिल्मी सितारों के नाम तो याद हैं, लेकिन तीर्थंकरों व अवतारों के नाम याद नहीं हैं । ऐसी विषम स्थितियों में अच्छे आदमी का निर्माण हो, मनुष्य मनुष्य की तरह जीना सीखे, मनुष्य पर से मनुष्य का शोषण समाप्त हो तथा युवा पीढ़ी धर्म की ओर मुड़े व उसमें एकता, अखंडता एवं राष्ट्रप्रेम की भावना जाग्रत हो । इस पावन उद्देश्य को लेकर इस शिक्षण शिविर का आयोजन किया जा रहा है । संस्कारों का शंखनाद हो, यही मेरी तमन्ना है ।

ये विचार प्रखर चिंतक जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कृष्णपुरा में "जैन मुनि से मिलिए" कार्यक्रम के तहत पत्रकार वार्ता में **शिविर का उद्देश्य क्या है ?** केउत्तर में व्यक्त किए ।

**प्राणी जगत में मनुष्य की क्या विशेषता है ?** इस प्रश्न के समाधान में युवासंत श्री तरुणसागरजी ने कहा कि मनुष्य एक विवेक सम्पन्न प्राणी है । लेकिन वह अपने विवेक का उपयोग विवेक की तरह नहीं करता है । आज तो उसकी स्थिति यह है कि वह रोता हुआ पैदा होता है । शिकायत करते हुए जीता है और निराश कर जाता है । यह पूछे जाने पर **आप इस शिविर में क्या पढ़ाओगे? क्या सिखाओगे?** उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि भारतीय संस्कृति का पाठ पढ़ाएंगे तथा जीवन जीने की कला सिखाएंगे । भारतीय संस्कृति का जो गौरवमय पहलू गुरुकुल था । उस गुरुकुल के अनुरूप ही शिविरार्थियों को शिक्षण प्रशिक्षण दिया जाएगा ।

**पहले के साधु संत जंगलों में साधना किया करते थे आजकल आप लोग शहरों में क्यों आ गए ?** के उत्तर में मुनिश्री ने बड़े ही सटीक शब्दों में उत्तर दिया और कहा कि पहले जंगलों में खूंखार शेर-चीते रहते थे उनके बीच में साधना करने से कर्मों की निर्जरा होती थी लेकिन आज न तो जंगल रहे और न ही शेर । अब जंगल के शेर शहर में आ गए इसलिए हम लोग भी शहर में आ गए ।

**क्या गुरु बनाना जरूरी है ?** के समाधान में मुनिश्री ने कहा कि जीवन विकास के लिए गुरु बनाना जरूरी ही नहीं अनिवार्य भी है क्योंकि कहा है "गुरु बिन जीवन शुरू नहीं " उन्नति की इच्छा रखने वालों को गुरु अवश्य बनाना चाहिए फिर वह मिट्टी का द्रोणाचार्य क्यों न हो । **ज्ञानी का लक्षण क्या है ?** के उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि अपने अज्ञान का बोध होना ही ज्ञानी विद्वान का लक्षण है।

**आंध्रप्रदेश के मेंढक जिले के रुद्रारम गांव में हिम्मतलाल कोठारी नामक एक जैन व्यक्ति कत्लखाना खोल रहा है, जहां प्रतिदिन सूरज की पहली किरण के साथ ही ५० हजार पशु काट दिए जाएंगे, इस बारे में आपका क्या कहना है ?** के उत्तर में मुनिश्री ने पूरी बुलंदगी के स्वर में कहा कि पहली बात तो मैं उस व्यक्ति (हिम्मतलाल कोठारी) को जैन मानता ही नहीं हूं । वह तो जैन के नाम पर कलंक है । जैन वह है जिसके जीवन में अहिंसा और करुणा झलकती है । दूसरी बात यह कि संस्कारों के अभाव में इस देश में आज तो एक ही हिम्मतलाल कोठारी पैदा हुआ है । अगर हमने समय रहते बच्चों को धार्मिक संस्कार न दिए तो आने वाले समय में घर-घर हिम्मतलाल कोठारी पैदा हो जाएंगे । हम लोग देश में जैन संत व अहिंसा प्रेमियों से संपर्क करके कत्लखाने को बंद कराने के खिलाफ जागृति लाएंगे तथा हिंसक व्यवसाय से जुड़े व्यक्ति की कड़े शब्दों में भर्त्सना करेंगे तथा उसे समाज से बहिष्कृत करवाएंगे ।

**भारतीय संस्कृति का लक्ष्य क्या है ?** के उत्तर में मुनिश्री ने कहा कि भारतीय संस्कृति का लक्ष्य कीचड़ से कमल की ओर, विरोध से विवेक की ओर, पदार्थ से परमार्थ की ओर आना है । **मन की चंचलता के बाबत** उन्होंने कहा कि आदमी का मन बड़ा चंचल है, चपल है । मन को पकड़ना कठिन है उतना ही कठिन है जितना कि तराजू में मेंढक को तौलना कठिन है । एक मेंढक को तराजू के पल्ले में रखो तो दस उचट जाते हैं ।

# अहंकार के हिमालय से नीचे उतरे बिना मोक्ष नहीं

**अहम् अगर अर्हम् बन जाए तो जीवन में धन्यता आ जाए। परमात्मा के मंदिर में उन्हें ही प्रवेश मिलता है जो अहंकार त्याग चुके होते हैं।**

इन्दौर। प्रखर प्रवक्ता जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि अहंकार, दुःख है, पीड़ा है। अहंकार और ममकार अगर मनुष्य जीवन से निकल जायें तो वह जीते जी मोक्ष का आनंद ले सकता है। अहंकार के हिमालय से नीचे उतरे बिना मोक्ष नहीं। अहम् अगर अर्हम् बन जाए तो जीवन में धन्यता आ जाए। परमात्मा के मंदिर में उन्हें ही प्रवेश मिलता है जो अहंकार त्याग चुके होते हैं। जो अहम् शून्य हो जाते हैं वे ही पूर्णता को उपलब्ध हो पाते हैं। विनय ही मुक्ति का द्वार है। विनय का अर्थ है शून्यता से पूर्णता की यात्रा।

मुनिश्री ने बताया कि हम यथार्थ का जीवन जिएं। दिखावे का जीवन तो बहुत जी लिया, अब यथार्थ से जुड़ें। यथार्थ से जुड़कर ही सत्य को उपलब्ध हो सकते हैं। अभी हम आकाश में जीते हैं, कल्पना में जीते हैं इसलिए सत्यदर्शन से वंचित रह जाते हैं। अभी हम पृथ्वी पर रहते हैं, लेकिन आकाश की बातें करते हैं। जिस पृथ्वी पर हमें जीना है, जिस पृथ्वी पर मरना है, जिस पृथ्वी पर हमें चलना और कुछ करना है हम उस पृथ्वी की बात नहीं करते हम आकाश की बात करते हैं। बात आकाश की नहीं, पृथ्वी की करो। कल्पना का जीवन नहीं, सत्य का जीवन जिओ।

उन्होंने पुरजोर शब्दों में कहा कि जो अहंकार की गिरफ्त में आ जाते हैं वे अकड़कर चलते हैं। अकड़कर चलने वाला मिट जाता है। अहंकार कठोर है, दाँत कठोर होते हैं इसलिए अल्पायु होते हैं लेकिन जिह्वा मुलायम, मृदु होती है अतः वह दीर्घजीवी हुआ करती है। उन्होंने कहा कि सम्यग्प्रणम्य (प्रणाम) ही सम्यक्त्व का कारण है। सम्यकप्रणाम वह है जिसमें अहम् की बू नहीं होती।

मुनिश्री ने बताया कि सत्य असीम नहीं, परमात्मा अनंत नहीं, अपितु मनुष्य का अहंकार असीम व अनंत है। असीम अंहकार अनंत परमात्मा से मिलने नहीं देगा, अतः अहंकार को त्यागना ही श्रेयस्कर है। सत्य तो स्वतंत्रता का उद्घोषक है, जो सत्य तुम्हें बांध ले वह सत्य नहीं, संप्रदाय है। संप्रदाय बांधता है और सत्य

मुक्त करता है। सत्य मुक्तिदाता है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई मुक्तिदाता नहीं। सत्य ही शिव है और शिव ही सुन्दर है। अरिहन्त मृत्युंजयी है उनकी उपासना करने वाला मरकर भी अमर हो जाता है जो भक्त है वही अमर है, वही भक्तामर है। भक्त ही भगवत्ता को उपलब्ध कर पाते हैं।

□ नईदुनिया
१९ अप्रेल ९३

# संस्कारों का शंखनाद संतों द्वारा ही संभव है

**संस्कृति मनुष्य जीवन का शाश्वत सत्य है, यही मनुष्य और जानवर के बीच की विभाजक रेखा है। संस्कृति से इंसान की पहचान होती है।**

इन्दौर। जैन साधक मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि भोग जीवन की शक्ति को क्षीण करते हैं। विषय विष सम दुखद है। इन्द्रिय विषय बिच्छु के बिछौने के समान कष्टकर है। चाह ने दाह, राग ने आग और आकांक्षा ने बुभुक्षा को जन्म दिया है। भोगों में भोग बुद्धि नहीं, अपितु अनासक्ति का भाव रखकर यदि जिएँ तो हमारी वासनाएँ और कामनाएँ स्वतः शान्त हो जाए।

भोग पंगु है। उससे जीवन की ऊंचाई नहीं चढ़ी जा सकती। जीवन शिखर तक पहुँचने के लिए त्याग की बैसाखियाँ चाहिए। त्याग वह सोपान है जिससे गुजरकर ही परमात्म मंदिर में प्रवेश संभव है। यदि राग इंसान को शैतान बना देता है तो याद रखो त्याग इंसान को भगवान बना देता है। त्याग ही जीवन है।

प्रखर प्रवक्ता, श्री तरुणसागरजी ने आगे कहा कि संस्कृति मनुष्य जीवन का शाश्वत सत्य है, यही मनुष्य और जानवर के बीच की विभाजक रेखा है। संस्कृति से इंसान की पहचान होती है। भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वोपरि संस्कृति है। भारतीय संस्कृति में राग की नहीं, त्याग की, धन की नहीं, धर्म की, और सत्ताधीशों की नहीं, संन्यासियों की पूजा होती है। संतों और धर्म संपदाओं के कारण ही यह देश महान है उत्कृष्ट संस्कृति और सभ्यता के कारण ही इसे जगद् गुरु होने का गौरव प्राप्त है।

साधु-संत ही इस राष्ट्र की असली सम्पत्ति है। संत राष्ट्र की धरोहर है। सद् गुरुओं के सानिध्य व पावन मार्गदर्शन में ही सभ्यता, संस्कृति व संस्कारों की सुरक्षा संभव है। संस्कारों का शंखनाथ संतों द्वारा ही संभव है कारण कि संत-साधक संस्कारों के जीवन्त प्रतीक और साकार मूर्तिमन्त होते हैं।

युवासंत श्री ने दहाड़ते हुए पूरी बुलंदगी के साथ जन-जन का आह्वान करते हुए कहा कि वे स्वयं को अपने आपको समझें और अपने सामर्थ्य व दिव्यता के बल पर देवत्व की प्राप्ति की दिशा में सार्थक प्रयास करें।

□ **चौथा संसार** २० अप्रेल ९३

# बच्चे कच्ची मिट्टी की मानिंद हैं, हम कुशल कुम्भकार बनें

**मुनिश्री ने कहा कि व्यक्ति अच्छी पत्नि का चुनाव कर सकता है, अच्छे पुत्र का नहीं। सुन्दर, सुशील पत्नि को ढूंढना पति के हाथ में है, लेकिन सुन्दर, सुशील पुत्र का मिलना प्रकृति (कर्म) के ऊपर है।**

इन्दौर। परम श्रृद्धेय संत श्री तरुणसागरजी ने कहा कि माँ पहली पाठशाला है। माँ की गोद में बालक जो सीखता है, वही जीवनभर जीता है। माँ के दूध में अनंत शक्ति है, यदि माँ धार्मिक व सुसंस्कृत होगी तो उसकी संतान भी सदाचारी व संस्कारित होगी। संतान को अच्छी शिक्षा के साथ, अच्छे संस्कार भी देना जरुरी है। ताकि आज का बालक कल का श्रेष्ठ नागरिक बन सके और लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत बना सकें।

मुनिश्री ने आगे कहा कि बच्चे कच्ची मिट्टी की मानिंद होते हैं, माँ–बाप को उनके साथ केवल कुशल कुम्भकार की भूमिका निभाने की आवश्यकता होती है। कुशल कुम्भकार के सधे हुए हाथ मनोवांछित घट का निर्माण कर लेते हैं और कर्तव्य के प्रति सजग माँ–बाप मनचाही संतान को प्राप्त कर लेते हैं। मुनिश्री ने कहा कि व्यक्ति अच्छी पत्नि का चुनाव कर सकता है, अच्छे पुत्र का नहीं। सुन्दर, सुशील पत्नि को ढूंढना पति के हाथ में है, लेकिन सुन्दर, सुशील पुत्र का मिलना प्रकृति (कर्म) के ऊपर है।

उन्होंने कहा कि एक व्यक्ति के तीन लड़के हैं तो एक बेटे को वह डाक्टर बना देता है, एक को वकील और एक को इंजीनियर बना देता है लेकिन आदमी एक को भी नहीं बना पाता। अच्छी शिक्षा व्यक्ति को डाक्टर, वकील तो बना सकती है, आदमी नहीं। व्यक्ति, आदमी अच्छे संस्कारों के बल पर बनता है। बच्चे तो कोरे कागज की तरह पैदा होते हैं लेकिन हम उन पर लिखावटें लिख देते हैं, लिखावटें लिखकर गंदा कर देते हैं। इतनी लिखावटें लिख देते हैं कि धीरे–धीरे कागज तो छिप जाता है, कालिख ही कालिख शेष रह जाती है। बालक रूपी कोरी स्लेट पर सुवाच्य अक्षरों

में संस्कृति की लिपि लिखें ताकि जीवन सुखद बन सके। उन्होंने कहा, बच्चे बड़े प्रतिभाशाली होते हैं लेकिन हम उनकी प्रतिभाओं को कुचल देते हैं। उनके कोमल मन को मैला कर देते हैं।

मुनिश्री ने कहा कि ईश्वर की भक्ति आत्मा की खुराक है। भक्ति के पीछे कोई लौकिक कामना नहीं होना चाहिए। भक्ति की छाती पर मांग चढ़ी और भक्ति मरी। निष्काम भाव से की गई भक्ति ही मुक्ति में कारण है। भक्त ही भगवत्ता को उपलब्ध होता है।

मुनिश्री ने कहा कि ज्ञान का फल विनय है। विनम्रता से ज्ञान में समीचीनता आती है। जिस ज्ञान के होने पर विनम्रता, सत्यता व परोपकार की भावना को बल न मिले वह ज्ञान नहीं, जिह्वा की खुजलाहट मात्र है।

□ नईदुनिया
२१ अप्रेल ९३

# दान छपाकर नहीं, छिपाकर दो

**रसगुल्ले का नाम सुनकर जिसके मुख में पानी आ जाए वह मिथ्यादृष्टि और जिसकी आंखों में पानी आ जाए वह सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि सत्य व आनंद का जीवन जीता है। वह भोगों में आसक्त नहीं होता, उसका मन विरक्त रहता है।**

इन्दौर। प्रबुद्ध चिंतक जैन मुनि श्री तरुणसागरजी ने कहा कि श्रावक धर्म में दो ही मूल कर्तव्त है – पूजा और दान। अर्जन के साथ विसर्जन और संग्रह के साथ त्याग भी जरुरी है। जो जोड़ता है वह डूबता है और जो छोड़ता है वह ऊपर उठता जाता है। दान छपाकर नहीं, छिपाकर देना चाहिए। ख्याति, पूजा व प्रतिष्ठा की भावना से दिया गया दान व्यर्थ है। दान देकर नाम की चाह रखना दान नहीं, विनिमय है, व्यापार है। इस हाथ से दिये दान की खबर उस हाथ को नहीं लगना चाहिए। गुप्तदान से गुप्त धन की प्राप्ति होती है। परिग्रह का प्रायश्चित दान है।

मुनि श्रेष्ठ श्री तरुणसागरजी ने भरत चक्रवर्ती के उदाहरण को रुपायित करते हुए कहा कि सांसारिकता में रहकर भी निर्लिप्त व निष्काम भाव से जीवन यापन करना मुक्ति का सहज उपाय है और दुर्लभ मानव देह को परोपकार व जनसेवा में समर्पित करना ही सबसे बड़ा धर्म है। उन्होंने कहा कि व्यक्ति चौबीस घंटे में यदि चौबीस बार भी मृत्यु और श्मशान को स्मरण कर ले, तो वह पाप–पंक में फंसने से बच जाए। अगर हमें अपनी मृत्यु का स्मरण बना रहे तो जीवन में संन्यास घटित हो जाए।

उन्होंने जैन धर्म के बहुचर्चित शब्द सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की परिभाषा बड़े ही सटीक शब्दों में बताते हुए कहा कि रसगुल्ले का नाम सुनकर जिसके मुख में पानी आ जाए वह मिथ्यादृष्टि और जिसकी आंखों में पानी आ जाए वह सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि सत्य व आनंद का जीवन जीता है। वह भोगों में आसक्त नहीं होता, उसका मन विरक्त रहता है। घर में रहता है, लेकिन घर को सिर्फ एक पड़ाव–मुकाम मानता है, गन्तव्य नहीं। धर्मशाला मानकर घर का रख–रखाव तो करता है लेकिन मूर्च्छित नहीं होता।

मुनिश्री ने नेताओं पर कटाक्ष करते हुए कहा कि रावण के दस मुंह थे फिर भी वह एक ही मुख से बात करता था, जबकि आजकल के नेता, जो कि कुकुरमुत्तों की तरह पैदा हो रहे हैं – एक मुंह के हैं लेकिन दस मुंह की बात करते हैं। उन्होंने नेता की परिभाषा में कहा, जो लेता ही लेता, देने के नाम पर मात्र आश्वासन देता, वाकई में वही है नेता।

□ दैनिक भास्कर
२२ अप्रेल ९३

# स्वाद भोजन में नहीं, भूख में होता है

**भोजन सिर्फ जीवन ही नहीं देता, मूर्च्छा भी देता है। अगर भूख से ज्यादा भोजन कर लिया जाए तो भोजन नशे का काम करने लगता है। भोजन अमृत भी है और विष भी है।**

इन्दौर। प्रखर प्रवक्ता मुनिश्री तरुणसागरजी महाराज ने कहा कि अहिंसा विश्व की आधारशिला है। क्षमा, करुणा और विश्व बन्धुत्व की भावना से राष्ट्रीय एकता को मजबूत किया जा सकता है। सात्विक आहार से सात्विक विचारों का जन्म होता है और सात्विक विचारों से ही अहिंसा के प्रचार को प्रश्रय मिलता है।

मुनिश्री ने आगे कहा कि स्वाद भोजन में नहीं, भूख में होता है। भूख जितनी गहरी होगी, स्वाद भी उतना ही गहरा होगा। हम बिना भूख के भोजन करते हैं इसलिए स्वाद नहीं आता। हमारी भूख जठराग्नि से नहीं, विचारों से उठती है। भूख सिर्फ मन की आदत है। समय-बेसमय बकरी की तरह चरने वाले भोजन को नहीं, विचारों को खाते हैं। मुनिश्री ने बताया कि मौन से भोजन करना चाहिए क्योंकि बोल-बोलकर भोजन करने से सरस्वती का अपमान होता है। आयुर्वेदिक शास्त्रानुसार एक ग्रास को बत्तीस बार चबाना चाहिए।

मुनिश्री ने आगे कहा कि भूख से कम भोजन करना भी तप है। भूख से कम ही खाना चाहिए। बहुत भोजन करने वाले लोग प्रखर बुद्धि के नहीं होते, ऐसे लोग अक्सर जड़ बुद्धि और अल्प आयुष्क होते हैं। ज्ञानी और संन्यासी कम भोजन करते हैं और लम्बे समय तक जीते हैं। भोजन सिर्फ जीवन ही नहीं देता, मूर्च्छा भी देता है। अगर भूख से ज्यादा भोजन कर लिया जाए तो भोजन नशे का काम करने लगता है। भोजन अमृत भी है और विष भी है। भोजन, भोजन की तरह होना चाहिए, उसका उपयोग शराब की तरह नहीं करना चाहिए। शाकाहार सम्पूर्ण आहार है। मनुष्य मूलतः शाकाहारी है। मनुष्य की शारीरिक संरचना शाकाहार की समर्थक है।

उन्होंने बताया कि भौतिकता व विलासिता में जाने वाला आत्म-अनुसंधान नहीं कर सकता। जीवन में सौन्दर्य के फूल खिले और सत्य के फल लगे ऐसा जीवन जीना सीखें।

□ नईदुनिया २३ अप्रेल ९३

# एक हल्की सी Smile दो

**बैर कब तक है ? जब तक दो दुश्मन एक दूसरे को देखकर मुस्कराते नहीं है । जिस दिन एक दूसरे को देखकर मुस्करा देंगे उसी दिन बैर का विनाश हो जाएगा ।**

इन्दौर । बालयोगी मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि हास्य मानव प्रदत्त ईश्वरीय वरदान है । हंसना सिर्फ मनुष्य के सौभाग्य है । आपने कभी किसी गधे को हंसते या किसी कुत्ते को मुस्कारते हुए नहीं देखा होगा । हास्य मनुष्य की नियति है । हास्यमन के बोझ को हल्का बना देता है । हंसना हर मनुष्य की किस्मत में नहीं होता । ईर्ष्या के जो पार है वे ही उन्मुक्त हास्य का आनंद ले सकते हैं । हम हंसे लेकिन हमारी हंसी निश्चल होनी चाहिए । कपटयुक्त हंसी आत्मवंचना है ।

संतश्री तरुणसागरजी ने कहा कि मनुष्य जब जन्म लेता है तब सारी दुनिया हंसती है, वह रोता है लेकिन अब हम ऐसा कर्म करें कि जब हम मरे तो सारी दुनिया रोए लेकिन हम हंसे । हंसना भी एक कला है । किसी को जीतना है तो तलवार से नहीं मुस्कराहट से जीतना सीखो । प्रेम से जीतना सीखो । प्रेम से जीता व्यक्ति कभी तुमसे विलग नहीं हो सकता । तलवार से जीता व्यक्ति तो कालान्तर में सबल हो जाने पर तुम्हें दबोच सकता है । बैर कब तक है ? जब तक दो दुश्मन एक दूसरे को देखकर मुस्कराते नहीं है । जिस दिन एक दूसरे को देखकर मुस्करा देंगे उसी दिन बैर का विनाश हो जाएगा ।

मुस्कराने में कुछ जाता भी तो नहीं है । रोते हैं तो आंसु जाते हैं मुस्कराने में तो वे भी नहीं जाते । हम कठोर से कठोर परिस्थितियों में भी हंसना सीखें क्योंकि जब आप हंसोगे तो अनेक आपके साथ हो लेंगे लेकिन आप जब रोएंगे कोई भी साथ नहीं देगा । अगर किसी को कुछ नहीं दे सकते तो कम से कम मिलते समय एक हल्की सी Smile देकर तो मिलो । विदा लेते तो Smile देकर तो विदा लो । हर वक्त चेहरे पर Smile बनाकर रखो । सदा मुस्कुराओ लेकिन नेता की तरह नहीं, किसी संत की तरह ।

मुनिश्री ने आगे कहा कि जीवन की बुनियाद संयताचरण है । वाणी का संयम,

इन्द्रिय का संयम और मन का संयम अगर है तो यम हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। संयमी जीवन आत्म विकास की गति है। जीवन के संवर्धन और संरक्षण के लिए संयम नितान्त आवश्यक है।

मुनिश्री ने कहा कि योगी को मौत छेड़ती नहीं है और भोगी को मौत छोड़ती नहीं है। मौत को मौत आ जाने का नाम ही समाधि है। तपस्या व साधन का फल समाधि है। समाधि जीवन की परम समृद्धि है। समाधि लेना समाधि देना और समाधि देखना तीनों ही महत् पुण्य कर्म है।

□ अज्ञात
२४ अप्रेल ९३

# वाणी वीणा का काम करे, बाण का नहीं

**वाणी मन की परिचायिका है । वाणी से आदमी की औकात और बुद्धि का पता लगता है । वाणी एक ऐसा चुम्बक है, जो मनुष्य को मनुष्यता के प्रति आकर्षित करता है ।**

इन्दौर । जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि बोलना एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे हम दूसरों से जुड़ते हैं और चुप होना ऐसी प्रक्रिया है जिससे हम अपने आपसे जुड़ते हैं । बोलना वह सेतु है जिसके माध्यम से हम दूसरों तक पहुंच जाते हैं और चुप रहना वह सेतु है जिससे हम अपने आप तक पहुंच जाते हैं । मौन रहना सर्वश्रेष्ठ है । आध्यात्मिक जीवन विकास के लिए मौन प्रथम शर्त है, क्योंकि मौन स्वयं से जोड़ता है और वाणी दूसरों से जोड़ती है । वाचालता पांडित्य की कसौटी नहीं होती, वरन् गहन गंभीर मौन ही मनुष्य के पंडित होने का लक्षण है । मौन के वृक्ष पर ही शान्ति के फल लगते हैं ।

मुनिश्री तरुणसागरजी ने आगे कहा कि वाणी मन की परिचायिका है । वाणी से आदमी की औकात और बुद्धि का पता लगता है । वाणी एक ऐसा चुम्बक है, जो मनुष्य को मनुष्यता के प्रति आकर्षित करता है । वाणी वीणा का काम भी कर सकती है और बाण का भी कर सकती है । हित–मित कर्णप्रिय वचन वीणा का काम करता है, तो कठोर, मर्मभेदी, कर्णकटु शब्दबाण की तरह हृदयभेदी होते हैं । तभी तो कहा कि तलवार का घाव तो भर जाता है, लेकिन वाणी का घाव नहीं भरता । वाणी वीणा का काम करे, बाण का नहीं ।

मुनिश्री ने बताया कि रसना इन्द्रिय के दो काम हैं – एक चखना (स्वाद लेना) और दूसरा बकना (बोलना) । रसना (जीभ) खाने में तो मीठा–मीठा पसंद करती है, लेकिन मीठा बोलना इसे नहीं आता । मीठी वाणी से दुश्मनी के जख्मों को भरा जा सकता है । मुनिश्री ने एक उदाहरण को रुपायित करते हुए कहा कि एक कटु शब्द जीवन में महाभारत खड़ा कर देता है दोपदी का यह वाक्य कि "अंधे का पुत्र अंधा ही तो होगा " महाभारत का कारण बन गया और समूचे कौरवों को ले डूबा।

मुनिश्री ने संन्यासी और गृहस्थ में अंतर बताते हुए कहा कि संन्यासी सरिता

की भांति जीता है और गृहस्थ सरोवर की भांति। सरिता सदा आगे बढ़ती है, जहां–जहां जाती है, लोगों की प्यास बुझाती है और अंत में अपने आराध्य सागर से मिल जाती है। लेकिन सरोवर बंधा होने के कारण आगे नहीं बढ़ता। सदा स्थित रहता है। स्थित होने के कारण पड़ा–पड़ा गंदा हो जाता है और प्रदूषण करने लगता है। हम सरोवर नहीं, सरिता बनें और सागर में जा मिलें। सागर में मिलना ही सरिता की नियति है।

□ नवभारत
२५ अप्रेल ९३

# बिना नेक बने राष्ट्र कभी एक नहीं हो सकता

**संसार और संन्यास परस्पर में विरोधी हैं। साधना और वासना दो विपरीत कार्य हैं, एक साथ सम्पन्न नहीं हो सकते, ठीक उसी तरह जिस तरह हंसना और गाल फुलाना एक साथ संभव नहीं है। संसार का अभाव ही संन्यास है।**

इन्दौर। जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि भारतीय संस्कृति मानवता की संस्कृति है। यह वह संस्कृति है जो सारे विश्व को एक इकाई मानकर उसमें ऊर्जा, चेतना, इंसानियत की ज्योति जलाती है। जहां पाश्चात्य संस्कृति का प्रमुख आधार खाओ, पियो मौज करो कल किसने देखा है, वही भारतीय संस्कृति जिओ और जीने दो के सूत्र पर अवलंबित है। राष्ट्रीय एकता की प्रथम शर्त है समष्टि के हित में व्यक्ति के हित का समाहित होना। बिना नेक बने राष्ट्र कभी एक नहीं हो सकता।

मुनिश्री तरुणसागरजी ने आगे कहा कि संसार और संन्यास परस्पर में विरोधी हैं। साधना और वासना दो विपरीत कार्य हैं, एक साथ सम्पन्न नहीं हो सकते, ठीक उसी तरह जिस तरह हंसना और गाल फुलाना एक साथ संभव नहीं है। संसार का अभाव ही संन्यास है। संसार से भागना संन्यास नहीं है, जागना संन्यास है। संसार की आयोजनाएं/तैयारियां तो हो सकती है, संन्यास की नहीं। संन्यास तो वह सहज घटना है जो कभी भी घट सकती है।

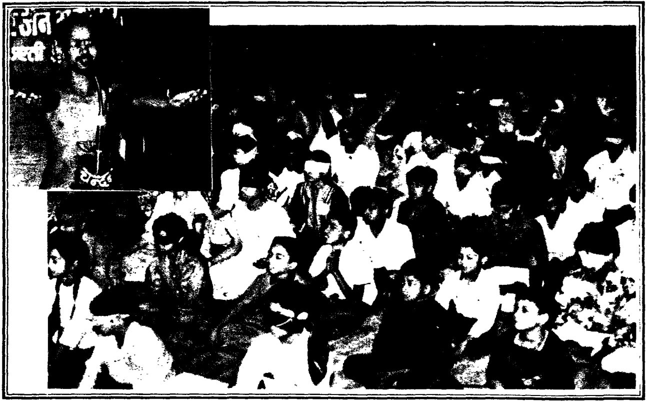
मुनिश्री ने महावीर स्वामी के पांच नामों की चर्चा करते हुए कहा कि महावीर ने तो अपने पांचों ही नाम सार्थक कर दिए हम अपना एक भी नाम सार्थक कर लें तो जीवन सार्थक हो जाएगा। नाम तो विज्ञप्ति मात्र है। काम नाम से बड़ा है। उन्होंने कहा कि सत्य सत्ता से महान है। सत्य मानव जाति के लिए ईश्वरीय वरदान है।

मुनिश्री ने आगे कहा कि संसार में दूध भी है और पानी भी है, अगर हम हंस हों तो पानी को छोड़कर दूध को प्राप्त कर सकते हैं। मन में विकार है तो माला क्या कर सकती है। आज मतभेदों का स्थान मन-भेदों ने ले लिया है। मतभेद भले हो, मन-भेद नहीं होना चाहिए। मानवीय धरातल पर सब एक हैं। राष्ट्र के निर्माण में एक-एक ईकाई की अहम् भूमिका है।

□ **दैनिक भास्कर** २६ अप्रेल ९३



मुनिश्री तरुणसागरजी शिविरार्थियों को सम्बोधित करते हुए



मुनि श्री शिविरार्थियों को ध्यान योग–साधना कराते हुए।

# ढोंग का नहीं, ढंग का जीवन जिएं

**जीवन एक पथ है, जो जानकर नहीं, चलकर तय किया जाता है। चलना चरित्र का प्रतीक है, चलना आचार का प्रतीक है। हम विचारों से तो बहुत ऊंचे उठ गए हैं, परंतु आचार में पिछड़ गए हैं। गुरु संस्कारों की पाठशाला है, गुरु के पास में बैठकर गुरुता का पाठ सीखना है**

इंदौर। जैन संत श्री तरुणसागरजी ने कहा कि मानवीय धरातल पर सब एक हैं, समान हैं। राष्ट्र के निर्माण में हर एक ईकाई की अहम् भूमिका होती है। आज का बालक कल का नागरिक है। अच्छे आदमी का निर्माण अच्छे संस्कारों से होता है। जीवन में संस्कारों का वही महत्व है, जो वृक्ष में मूल का, इमारत में बुनियाद और जीवन में प्राण का होता है। संस्कारों के अभाव में संस्कृतियां विकृत हो जाती हैं।

मुनिश्री ने कहा कि इस शिविर का एकमात्र उद्देश्य नई पीढ़ी में सत् चरित्र का निर्माण करना व जीने की कला सिखाना है। अभी हमको सबकुछ आता है, सिवाय जीने के। अभी हम ढंग का नहीं, ढोंग का जीवन जीते हैं। धर्म ढंग का जीवन जीने की कला सिखाता है। ढोंग की नहीं, ढंग का जीवन जिएं। जिसे ढंग का जीवन जीना आ जाता है, वह आनंद का जीवन जी लेता है।

युवा संत ने पुरजोर शब्दों में कहा कि लौकिक शिक्षा से सुविधाएं तो मिल सकती हैं, लेकिन सुख नहीं मिल सकता। सुख की प्राप्ति धर्म की शिक्षा से ही संभव है, लौकिक धर्म शिक्षा तो शरीर के नष्ट होते ही नष्ट हो जाती है, लेकिन धर्म शिक्षा व संस्कार मृत्यु के बाद भी साथ रहते हैं। लौकिक शिक्षा से जीवन का निर्वाह तो हो सकता है, जीवन का निर्माण नहीं। जीवन निर्माण की शुरुआत केवल धर्म व आध्यात्म की शिक्षा से ही संभव है। ज्ञान की किताब या शास्त्र में नहीं अपितु आत्मा में है। सच्चा ज्ञान वही है, जो दुखों से मुक्त कर दे। कहा भी है "या विद्या या विमुक्तये"

उन्होंने बताया कि जीवन एक सेतु है और सेतु पर घर नहीं बनाया जाता। जीवन सतत है। जीवन एक यात्रा है और मृत्यु एक पड़ाव है। जीवन एक नाटक है और मृत्यु एक पटाक्षेप है। जीवन शुरुआत है और मृत्यु शुभांत है।

□ दैनिक भास्कर
२८ अप्रैल ९३

# कलह प्रिय नहीं, कल्याणप्रिय बनें

**अगर मन में दीवार खींच जाए तो फिर मकान में दीवार खींचने में देर नहीं लगती। मन उस दरवाजे की तरह होता है, जो भीतर की तरफ भी खुलता है और बाहर की तरफ भी खुलता है।**

इंदौर। परम विद्वान जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि आलस्य ही आत्मा हत्या है। आलसी जीकर भी मृत है। धर्म उनकी संपदा है, जो परिश्रम और संकल्प के धनी हैं। हमें कलह प्रिय नहीं, कल्याणप्रिय बनना है, क्योंकि जिस घर, परिवार में आए दिन कलह होती रहती है, वहां विपत्ति और विषाद का बसेरा हो जाता है। वर्तमान परिस्थिति में भड़कने और बौखलाने के बजाय उनको स्वीकार करके आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि विषम परिस्थिति बुद्धि के लिए चुनौती होती है। कलह में रस लेने वाला आत्मकल्याण नहीं कर सकता।

मुनिप्रवर श्री तरुणसागरजी ने आगे कहा कि अगर मन में दीवार खींच जाए तो फिर मकान में दीवार खींचने में देर नहीं लगती। मन उस दरवाजे की तरह होता है, जो भीतर की तरफ भी खुलता है और बाहर की तरफ भी खुलता है। मन श्रेय की तरफ भी ले जाता है और प्रेय की तरफ भी ले जाता है, मन बंधन में भी कारण है और बंधन से मुक्ति में भी कारण है।

प्रेम जब प्रार्थना बनता है, तो जीवन स्वर्ग बनता है और प्रेम जब वासना बनता है, तो जीवन नर्क बनता है। प्रेम करें, लेकिन वह वासनामूलक नहीं, भावनामूलक हो। प्रेम करना ही पर्याप्त नहीं है, प्रेमपूर्ण व्यवहार करना भी आवश्यक है। प्राणीमात्र के प्रति प्रेम और करुणा की भावना मानवीय कर्त्तव्य है।

मुनिश्री ने बुद्धि को परमार्थ का साधन बताते हुए कहा कि यह महज पेट भरने का साधन नहीं है, अपितु बुद्धत्व की उपलब्धि में भी कारण है। जो बुद्धि को स्वार्थ की निगाह से देखता व बेचता है वह व्याभिचारी है। बुद्धि और विवेक में अंतर बताते हुए महाराजश्री ने कहा कि बुद्धि तो कुबुद्धि भी होती है और सुबुद्धि भी होती है, लेकिन विवेक कभी कुविवेक या सुविवेक नहीं होता, विवेक तो केवल विवेक होता है।

□ अज्ञात
२९ अप्रैल ९३

## निंदक सुअर के समान है, जो हमें शुद्ध रखता है

**हमारे पास महावीर का आगम तो है, लेकिन महावीर का अनुभव नहीं है। महावीर का अनुवाद तो है, लेकिन महाबीर की अनुभूति नहीं है। महावीर का उपदेश तो है, लेकिन उपयोग नहीं है।**

इंदौर। प्रखर चिंतक जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि निंदक दुश्मन नहीं मित्र हैं। उसे धन्यवाद देना चाहिए। यदि फिल्म में खलनायक न हो, तो नायक के व्यक्तित्व में चमक नहीं आ सकती और जीवन में कोई निंदक न हो, तो हम सजग नहीं रह सकते। निंदक हमें सावधान रखता है। जिस गली में दो–चार सुअर रहते हैं, वह गली स्वच्छ रहती है। निंदक सुअर के समान है, जो हमें शुद्ध रखता है।

मुनिश्री ने कहा कि हमारे पास महावीर का आगम तो है, लेकिन महावीर का अनुभव नहीं है। महावीर का अनुवाद तो है, लेकिन महाबीर की अनुभूति नहीं है। महावीर का उपदेश तो है, लेकिन उपयोग नहीं है।

महावीर का नाम सौ बार उच्चारण करने के बजाय महावीर द्वारा प्रणीत एकाष आचरण जीवन में उतार लें, तो जीवन धन्य हो जाए। महाबीर का समग्र जीवन सत्य की खोज और प्रयोग की कहानी है, महावीर किसी की बपौती नहीं, प्राणी मात्र की धरोहर है। महावीर सबके थे और सब महावीर के थे। महावीर की दृष्टि से अपना–पराया जैसा कोई नहीं था। महावीर ने कभी नहीं कहा कि मैं जैनों का हूं, महावीर जैन नहीं, जिन थे।

मुनिश्री ने कहा कि मृत्यु तो प्रतिफल है, वह हर क्षण जीवन का पीछा कर रही है। व्यक्ति कितना भी चालाक क्यों न हो, मृत्यु के शिकंजे से नहीं बच सकता। मृत्यु परम सत्य है, मृत्यु परम जीवन है, मृत्यु परम धन्यता है।

□ चेतना
३० अप्रैल ९३

# मृत्यु मातम नहीं, महोत्सव है

**जहां कोई इनटेंशन (लक्ष्य) नहीं है , वहीं टेंशन (तनाव) है। बिना लक्ष्य के जीवन भर चलो, तो भी व्यर्थ है, कारण कि उसमें चलना तो बहुत होता है, लेकिन पहुंचना कहीं नहीं।**

इंदौर। प्रबुद्ध साधक जैन मुनिश्री तरुणसागर जी ने कहा कि वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। जिस प्रकार जल का स्वभाव मधुरता है और नमक का स्वभाव खारापन है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव चरित्रमय है, सत् चिद आनंदमय है। धर्म की यात्रा आनंद की यात्रा है। धर्म जीवन में हो तो जीवित रहता है और जिव्हा में हो तो मृत हो जाता है। धर्म प्राणों का प्राण है। जहां धर्म है, वहां सत्य है। जहां सत्य है, वहां शक्ति हैष जहां शक्ति है। वहां गति है और जहां गति है, वहीं जीवन है। जीवन स्वयं के द्वारा सृजन है, वह नियमित नहीं, निर्माण है।

मुनिश्री तरुणसागरजी ने संन्यासी और गृहस्थ में अंतर बताते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा कि संत के लिए मृत्यु एक महोत्सव है और गृहस्थ के लिए मृत्यु एक मातम है। संन्यासी को मृत्यु छेड़ती नहीं है और गृहस्थ को मृत्यु छोड़ती नही है। मृत्यु मातम नहीं, महोत्सव है।

मुनिश्री ने कहा कि यदि जीवन से जीवन का आनंद लेना है तो जीवन को अर्थ देना होगा और अर्थी को जीवन देना होगा। अर्थहीन जीवन व्यर्थ है और अर्थपूर्ण जीवन परमार्थ है। हम चमड़ा प्रेमी (देहप्रेमी) नहीं आत्माप्रेमी बनें, जो चमड़े से प्रेम करते हैं, वे चमार हैं।

मुनिश्री ने आगे कहा कि जहां कोई इनटेंशन (लक्ष्य) नहीं है , वहीं टेंशन (तनाव) है। बिना लक्ष्य के जीवन भर चलो, तो भी व्यर्थ है, कारण कि उसमें चलना तो बहुत होता है, लेकिन पहुंचना कहीं नहीं।

उन्होंने कहा कि विश्व को सबसे अधिक जिसकी जरूरत है, वह है अहिंसा। अहिंसा कायरता नहीं, बल्कि अवधारणा है, जिसके माध्यम से विश्व में स्थायी शांति स्थापित की जा सकती है। अहिंसा ही परम धर्म है। बारूद के ढेर पर बैठे विश्व को अहिंसा का सिद्धांत ही राख होने से बचा सकता है।

□ दैनिक भास्कर
१ मई ९३

# सुमरण करो, तो सु–मरण होगा

**शरीर तो किराए का मकान है। किराए का मकान खाली करने से पहले किराए के मकान का आकर्षण कम हो जाता है। मनुष्य जिंदगी आत्मकल्याण का Season है। मनुष्य अब भव की सार्थकता आत्म अनुसंधान की साधना करने में है**

इंदौर। ओजस्वी वक्ता जैनश्री तरुणसागरजी ने कहा कि सुमरण करो तो सु–मरण होगा। परमात्मा के सुमरण/स्मरण से मानसिक शांति तथा आत्मिक अनुभूति होती है। समय रहते ईश्वर का ध्यान कर लेना चाहिए, ताकि जीवन के अंत में रोना न पड़े। **शरीर तो किराए का मकान है। किराए का मकान खाली करने से पहले किराए के मकान का आकर्षण कम हो जाता है। मनुष्य जिंदगी आत्मकल्याण का Season है। मनुष्य अब भव की सार्थकता आत्म अनुसंधान की साधना करने में है**

उन्होंने कहा कि लायक बनने के लिए जीवन भी कम पड़ सकता है, लेकिन नालायक बनने के लिए दो–चार क्षण ही काफी हैं। वह व्यक्ति कभी लायक नहीं बन सकता, जो दूसरों को नालायक कहता हैहै। अपने को नालायक और दूसरों को लायक कहने वाला ही लायक बन सकता है।

प्रखर चिंतक मुनिश्री तरुणसागर ने कहा कि नारी की कोख मानवता की जन्मभूमि है। भारतीय संस्कृति में नारी को सदा सम्मान मिला है। तीर्थंकर की माता होने का गौरव भी नारी से ही मिला है। एक नारी के लिए एक आदर्श मां बनना तभी संभव है, जबकि उसमें पृथ्वी की सी सहिष्णुता, समुद सी गंभीरता, हिम सी शीतलता, गंगा के समान पवित्रता, वीणा जैसी मधुरता, हिमालय की उच्चता और आसमान जैसी विशालता हो। सौम्य गुणों के अभाव में नारी का नारीत्व अधूरा है।

मुनिश्री ने एक शेर "मंजिल पर जिन्हें जाना है, शिकवे नहीं करते, शिकवों में जो उलझे हैं, पहुंचा नहीं करते। सुनाते हुए कहा कि जिंदगी हिम्मत का सौदा है। जिंदगी में रौनक संघर्षों से आता है। संघर्ष ही जीवन है। चुनौती जिंदगी का दूसरा नाम है।

□ अज्ञात
२ मई ९३

# इंद्रियां स्विच हैं, मन मैनस्विच है

**मन का स्वभाव है कि वह नया मांगता है। मन सदा नया-नया मांगता है, वह पुनरुक्ति नहीं मांगता। कुत्ते की तरह मानव मन भटकता है, सूंघता है और आगे बढ़ जाता है।**

इंदौर। जैन मुनिश्री तरुणसागर ने कहा कि अर्हम् (आत्मा) को अहम् (परमात्मा) बनाना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। आत्मज्ञ ही कृतज्ञ बन सकता है। कृतघ्नी व्यक्ति तो उस हाथ को ही काट लेता है, जो उन्हें भोजन देता है। संत पुरुष दूसरों के द्वारा किए गए उपकारों को कभी नहीं भूलते। धर्म रेडिमेड के कपड़े तो नहीं कि बाजार से खरीदो और पहन लो, वह तो अंतस् से अद्भुत सहज उपलब्धि है।

मुनिश्री ने कहा कि धर्म जीव की आत्मशक्ति है। इसके अभाव में शिव शव है और अग्नि मात्र राख का ढेर है। धर्म अपने आप में परिपूर्ण है, उन्होंने कहा कि संयम ही जीवन है। संयम वह मशाल है, जो जीवन के कोने-कोने को जगमगा देती है। संयम के अभाव में इन्द्रियां विद्रोह कर देती है और मन बगावत कर बैठता है।

मुनिश्री ने बताया कि मन का स्वभाव है कि वह नया मांगता है। मन सदा नया-नया मांगता है, वह पुनरुक्ति नहीं मांगता। कुत्ते की तरह मानव मन भटकता है, सूंघता है और आगे बढ़ जाता है। आप भोजन करते हैं, पहले ग्रास में जो आनंद आता है, वह दूसरे ग्रास में नहीं आता। दूसरे ग्रास में जो आनंद आता है, वह तीसरे में नहीं आता। मन परिवर्तन चाहता है। वह पदार्थ की तरफ उन्मुख होता है और पदार्थ की तरफ उन्मुखता ही पाप है। इंद्रियां स्विच हैं, मन मेनस्विच है। मेनस्विच बंद कर दें, तो स्विच काम नहीं करते। मनरूपी मेन स्विच बंद कर दें, तो इंद्रियां स्वतः शांत हो जाती है।

मुनिश्री ने कहा कि आक्रमण पाप है, प्रतिक्रमण पुण्य है। पदार्थ से परमार्थ की ओर आना प्रतिक्रमण है और परमार्थ से पदार्थ की ओर जाना आक्रमण है। पदार्थ को पकड़ता है, वह पापी है और जो परमार्थ को पकड़े वह पुण्यात्मा है। पदार्थ को पकड़-पकड़कर तो हम पागल हो गए, अब जरा परमार्थ की ओर भी बढ़े।

□ नईदुनिया
३ मई ९३

# धन सुविधा दे सकता है, सुख नहीं

**धर्म आत्मा का स्वभाव है। स्वभाव को कभी खोया नहीं जा सकता। ज्यादा से ज्यादा भूला जा सकता है। जैसे आग अपनी गर्मी नहीं खो सकती, वैसे ही तुम अपने चैतन्य स्वभाव को नहीं खो सकते। धर्म एक को जानने पर जोर देता है और विज्ञान अनेक को जानने पर जोर देता है। विज्ञान अनेक को जानकर भी अज्ञानी बना रहता है और धर्म एक (आत्मा) को जानकर भी ज्ञानी हो जाता है।**

इंदौर। प्रखर प्रवक्ता जैन मुनिश्री तरुणसागरजी ने कहा कि धन सुविधा तो दे सकता है, सुख नहीं। सुख का साधन सिर्फ धर्म है। पैसा कमाना ही जीवन का लक्ष्य है। अगर आपने अपने बच्चों को जीने की कला नहीं सिखाई, उनका जीवन निर्माण नहीं किया और जीविका में लगा दिया तो मानना चाहिए कि बंदर के हाथ में तलवार पकड़ा दी है।

मुनिश्री ने कहा कि हर चीज की तीन अवस्था होती है– प्रकृति, संस्कृति और विकृति। चावल बाजार में जिस रूप में मिलता है, वह उसकी प्रकृति है। पका लिया, भात बना लिया, वह संस्कृति है और कीडों का शिकार हो जाए, तो वह विकृति है। मनुष्य जिस रूप में पैदा होता है, वह प्रकृति है संत/भगवान बन जाए तो वह उसकी संस्कृति है और अधर्म के पथ पर चलने लगे शैतान बन जाए तो वह विकृति है।

मुनिश्री ने कहा कि धर्म आत्मा का स्वभाव है। स्वभाव को कभी खोया नहीं जा सकता। **ज्यादा से ज्यादा भूला जा सकता है। जैसे आग अपनी गर्मी नहीं खो सकती, वैसे ही तुम अपने चैतन्य स्वभाव को नहीं खो सकते। धर्म एक को जानने पर जोर देता है और विज्ञान अनेक को जानने पर जोर देता है। विज्ञान अनेक को जानकर भी अज्ञानी बना रहता है और धर्म एक (आत्मा) को जानकर भी ज्ञानी हो जाता है।**

पंडित और ज्ञानी में अंतर बताते हुए उन्होंने कहा कि पंडित लकीर का फकीर होता है, उसकी एक बंधी रेखा होती है, लेकिन ज्ञानी की कोई बंधी रेखा नहीं होती। ज्ञानी के पास प्रकाश भरी आंख होती है। पंडित के पास सिर्फ जानकारियां होती हैं, जबकि ज्ञानी के पास जीवंत सत्य होता है। स्वयं का अनुभव होता है।

□ **अज्ञात**
**४ मई ९३**

# संत, राजनेताओं की गिरफ्त से दूर रहें

**बेखबरी का हजारों वर्षों तक जीने के बजाय खबरदारी का एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है। अज्ञानी मुर्खों का राजा बनना बेकार है और ज्ञानी बनकर भिक्षा मांगना अच्छा है।**

इंदौर। जैन मुनिश्री तरुणसागर ने कहा कि मनुष्य के जीवन में सफलता तभी प्राप्त हो सकती है, जब वह ईर्ष्या, अहंकार, अधर्माचरण और लोभवृत्ति को त्यागकर संयमित एवं त्यागमय जीवन जिए और प्राणिमात्र की भलाई के लिए अपने आप को समर्पित कर दें।

मुनिश्री ने कहा कि पहले जहां धर्म के पीछे धन दौड़ता था और धर्म का उस धन से कोई सरोकार नहीं होता था, पर आज परिस्थिति इससे विपरीत है। धर्म धन के पीछे दौड़ रहा है और तथाकथित संत राजनेताओं की गिरफ्त में है। पहले साधु-संतों के पीछे राजनेता भागते थे, लेकिन आज साधु-संत झूठी ख्याति व यश के लिए नेताओं के पीछे भाग रहे हैं। नेताओं के साथ फोटो खिंचवाने में गौरव का अनुभव कर रहे हैं, जबकि संतों के नेताओं से दूर रहना चाहिए।

उन्होंने बताया कि संत संसार के मरुस्थल के त्रिविध तापों में तप्त मानवों के लिए विशाल वटवृक्ष है। संत/मुनिजन एक व्यक्ति मात्र के न होकर वह जीवित संस्थाएं हैं, जो संसार में लोगों के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उन्होंने संत समुदाय को सामाजिक विरासत के रक्षक एवं मर्यादित जीवन पद्धति के पुरोधा बताते हुए कहा कि जब-जब समाज संतों की उपेक्षा करता है, तब-तब सामाजिक व धार्मिक व्यवस्थाएं पंगु हो जाया करती हैं।

मुनिश्री ने कहा कि बेखबरी का हजारों वर्षों तक जीने के बजाय खबरदारी का एक दिन जीना भी श्रेष्ठ है। अज्ञानी मुर्खों का राजा बनना बेकार है और ज्ञानी बनकर भिक्षा मांगना अच्छा है। मुनिश्री ने कहा कि मोक्ष तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है, उसे जानो, पहचानो और विवेक तथा वैराग्य का धारण करो। वैराग्य के पथ पर चलकर ही मोक्ष मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। संसार के हजार-हजार द्वार हो सकते हैं, लेकिन मोक्ष का तो एकमात्र द्वार वीतराग धर्म है। उस वीतराग धर्म के सिवाय कहीं मन लगाया तो अंत में रोना ही पड़ेगा।

□ नईदुनिया
६ मई ९३